सन्त-कवि आचार्य विद्यासागरजी कृत

मूकमाटी महाकाव्य

काव्यशास्त्रीय निकष

•

मूकमाटी महाकाव्य

काव्यशास्त्रीय निकष

समीक्षा हेतु

लेखक
प्रोफेसर शीलचन्द्र जैन
हिन्दी विभाग
डेनियलसन कालेज, छिन्दवाड़ा

*

प्रकाशक
दिगम्बर जैन समाज, छिन्दवाड़ा (म. प्र.)

प्रथम बार   १९९१   मूल्य
१०.००
(दस रुपये)

समर्पण

परमपूज्य श्रद्धेय गुरुवर

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

महाराज के

पद-पंकजों में

सादर सविनय

समर्पित।

—प्रो. शीलचन्द्र जैन

भावाञ्जलि

विश्वविद्यालयीन परीक्षावधि में, वीक्षण के दौरान,"मूकमाटी" महाकाव्य की प्रति की अप्रत्याशित प्राप्ति ने जिज्ञासा और कौतूहल जागृत कर दिया। एक–दो बार अध्ययन और मनन के फलस्वरूप मन–सरवर–भाव–तरंगों से तरंगायित हो उठा, किन्तु भाषाभिव्यक्ति का साहस नहीं कर सका।

पुनश्च; पठन–मनन की तल्लीनता ने कुछ साहस जुटाया और अपनी अल्प–बुद्धि से इस अगाध–अध्यात्म–सागर में डूबने का लघु–प्रयास प्रारम्भ कर सका। कविवर बिहारी की इन पंक्तियों का सम्बल लेकर–

तंत्री–नाद, कवित्त–रस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग।।

परमपूज्य श्री अभयसागर जी महाराज के आशीर्वाद, मित्रों एवं परिजनों की अनवरत प्रेरणा का "मूकमाटीः महाकाव्यः काव्यशास्त्रीय निकष" विषय पर, बाल–सुलभ–बुद्धि–सम साधारण पाठकों के निमित्त एक सरल अध्ययन जैसा,–अल्पज्ञ का यह प्रयास है।

अध्यात्म, धर्म और दर्शन जैसे गूढ़ एवं दुरूह विषयों की गहराई में पहुँचने की अक्षमता के कारण, सरसरी नजर से देखने की धृष्टता हुई है, जिसे क्षम्य समझने की अपेक्षा करता हूँ।

इस लघु प्रयास में, काव्य के सर्वोपरि रूप महाकाव्य के अध्ययन का क्रम कुछ इस प्रकार निर्धारित करने का प्रयास कर सका हूँ–विषय– प्रवेश, महाकाव्य का स्वरूप, परिभाषा, लक्षण, मानदण्ड; मूकमाटी महाकाव्य की सविस्तार–कथा–वस्तु, पात्र–योजना एवं चरित्र–चित्रण, रस–निरूपण एवं शिल्प–विधान तथा नवीन जीवन दृष्टि, नारी विषयक नवीन परिकलन हिन्दी–साहित्य के कतिपय आधुनिक महाकाव्यों के परिप्रेक्ष में।

आशा एवं विश्वास है, कि यह प्रयास साहित्यानुरागियों, आत्मार्थी जीवों एवं साधारण–बुद्धि–काव्य–प्रेमियों को काव्यानन्द एवं अध्यात्म–रस–पान करने में अत्यल्प उपयोगी–सहकारी बन सका तो श्रम की सार्थकता समझी जा सकती है, अन्यथा शब्द–संग्रह एवं पाठकों के समय का अपव्यय मात्र होगा।

पुनश्च, विद्वानों, मनीषियों, साहित्य–मर्मज्ञों, काव्यालोचकों, बुद्धि–जीवियों, सुहृद्–पाठकों एवं गुरुजनों से, इस प्रयास की त्रुटियों–कमियों के परिमार्जन हेतु सुझावों, निर्देशों एवं आशीर्वादों की अपेक्षा के साथ क्षमा–प्रार्थी हूँ।

परम–पूज्य संत–शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के श्रीचरणों में, श्रद्धापूर्वक शत–शत नमन करते हुए, परम–पूज्य श्री अभयसागर जी महाराज के चरण–कमलों में नमन करता हूँ, जिनके आशीर्वाद से अपनी अल्पबुद्धि से भावनाओं को शब्द–रूप दे सका हूँ। पूज्य ब्रह्मचारी श्री राकेशजी के आशीर्वाद एवं सत्प्रेरणा के प्रति सादर–आभार व्यक्त करने की धृष्टता नहीं कर सकता हूँ।

सब जीवों की मंगल–कामना के साथ पुनश्च,परम श्रद्धेय गुरुजनों के चरणों में श्रद्धावनत।

विनयावनत

प्रोफेसर शीलचन्द्र जैन
हिन्दी विभाग
डेनियलसन कॉलेज,
छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

छिन्दवाड़ा
२८–३–९१

●

दो शब्द

मूकमाटी महाकाव्य आचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी महाराज का रूपक महाकाव्य है। इस साहित्यिक कृति में वर्तमान सन्दर्भों की पृष्ठभूमि में आत्मा से परमात्मा बनने का सही दिशा-बोध दिया है। सन्त-कवि ने माटी जैसी अकिंचन, पद-दलित और तुच्छ वस्तु को महाकाव्य की विषय-वस्तु बनाकर साहित्य जगत् को आश्चर्यचकित कर दिया है।

प्रोफेसर शीलचन्द्र जैन ने "मूकमाटी" महाकाव्य का गहन अध्ययन कर काव्य-शास्त्रीय निकष के माध्यम से महाकाव्यगत कथा-वस्तु, पात्र-योजना, चरित्र-चित्रण, रस, छन्द, अलंकार एवं भाषा-शैली का विस्तृत विवेचन किया है।

प्रस्तुत काव्यशास्त्रीय निकष शोध करने वाले छात्रों, अध्यात्मप्रेमियों, साहित्यकारों एवं जैन-दर्शन और जैन-धर्म की पृष्ठभूमि से अपरिचित विद्वानों, मनीषियों तथा जन-साधारण को इस महाकाव्य को समझने, सोचने, समीक्षा करने, और महाकाव्यगत गम्भीर्य एवं अध्यात्म को समझने में सहायता मिलेगी।

मूकमाटी महाकाव्य : काव्यशास्त्रीय निकष के प्रकाशन में श्री पूरनचन्द्रजी प्रकाशचन्द्र जी जैन ढाना (सागर), श्रीमती अंगूरीबाई पाटोदी धर्मपत्नी श्री बाबूलाल जी पाटोदी, छिन्दवाड़ा श्रीमती चैनाबाई जैन धर्मपत्नी स्व. श्री प्रेमचन्दजी जैन, छिन्दवाड़ा, और श्री सुगमचन्द जी गोयल एवं धर्मपत्नी श्रीमती शान्तिबाई जी गोयल, छिन्दवाड़ा ने जो अपना सहयोग दिया हम उनके प्रति अत्यन्त आभारी हैं। साथ ही पुस्तक के प्रकाशन में श्री महेन्द्रकुमार जैन आबकारी अधिकारी छिन्दवाड़ा की प्रेरणा एवं सहयोग के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

छिंदवाड़ा
२८/३/९१
महावीर जयन्ती

प्रकाशक
समस्त दिगम्बर जैन समाज,
छिंदवाड़ा

•

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

अनुक्रमणिका

●

मूकमाटी महाकाव्य : काव्यशास्त्रीय निकष के प्रकाशन में आर्थिक सहयोग प्रदान करने वाले दानदाता

५००१) श्री पूरनचन्द जी प्रकाशचन्द्र जी जैन, ढाना (जिला सागर)।

५००१) श्रीमती अंगूरीबाई पाटोदी धर्मपत्नी श्री बाबूलाल जी पाटोदी, छिन्दवाड़ा।

५००१) श्रीमती चैनाबाई जैन धर्मपत्नी स्व. श्री प्रेमचन्द जी जैन छिन्दवाड़ा।

५००१) श्री सुगमचन्द्र जी गोयल एवं धर्मपत्नी श्रीमती शान्तिबाई जी गोयल, छिन्दवाड़ा।

महाकाव्य का स्वरूप एवं उद्देश्य

साहित्य, जीवन और जगत् का प्रतिबिम्ब होता है। इसमें जीवन का स्वस्थ दृष्टिकोण साहित्य का सत्य बनकर उपस्थित होता है। जीवन कर्मक्षेत्र है। कर्म की उत्पत्ति मानसिक होती है। उत्कृष्ट साहित्य में अन्तः और बाह्य की आदर्शोन्मुख भावसृष्टि की स्थापना होती है। मन की शाश्वत प्रवृत्तियाँ और मानव-स्वभाव से उत्पन्न भाव ही जीवन को संचालित करते हैं।

भारतीय साहित्य का सृजन आर्यों के आविर्भाव से सम्बद्ध है। आर्यों ने वेद, वेदांग, सूत्र, स्मृतियाँ, दर्शन-ग्रन्थ, महाकाव्य और पुराणों की रचना की। "रामायण" और "महाभारत" आर्यों के महाकाव्य हैं। इनकी रचना ऋषियों एवं सन्तों ने की है। भारतीय साहित्य में सन्त-साहित्य-सृजन की प्राचीन एवं अनवरत परम्परा है।

जैन-साहित्य (दर्शन) तो अधिकांशतः संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में जैनाचार्यों द्वारा रचा गया है। आधुनिक युग में भी जैन-साहित्य हिन्दी भाषा के अतिरिक्त अन्य प्रान्तीय भाषाओं में भी, जैनागम के प्रकाण्ड पण्डितों एवं जैनाचार्यों द्वारा सृजित हो रहा है। अद्यावधि आचार्य श्री विद्यासागरजी कृत "मूकमाटी" महाकाव्य, (प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; १८ इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११०००३, प्रथम संस्करण, १९८८ पृ.२४ + ४८८) सन्त-काव्य-परम्परा का अनुपम उदाहरण है।

साहित्य-सृजन में वातावरण और प्रवृत्तियों का प्रमुख हाथ रहता है। साहित्यकार जीवन को जीवन देने वाली जन-जीवन की अनुभूतियों को इतिहास के पृष्ठों और प्रत्यक्ष जीवन में ढूँढ़ता है। वह साहित्य-सृजन में अतीत और वर्तमान की इस निधि और कल्पना की सहायता से भविष्य को सजाने का प्रयास करता है। अतः साहित्य के मूल्याकन में तब-तक रचना के प्रति न्याय नहीं हो सकता, जब-तक यह न जान लिया जाये कि रचनाकार ने किन स्थितियों और प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर कृति को जन्म दिया है।

काव्य क्या है ? पाठकों के मन में यह जिज्ञासा स्वाभाविक है। "कविता" साहित्य का एक प्रधान अंग है और साहित्य है जीवन। कविता को जीवन की व्याख्या कहा जाता है। काव्य को एक निश्चित परिभाषा में बाँधना कठिन है। कतिपय आचार्यों ने काव्य की निम्नांकित परिभाषायें दी हैं-

भारतीय आचार्यों का मत -

१. **भामह के अनुसार**- "शब्द और अर्थ का मिलन ही काव्य है।"
२. **मम्मट के अनुसार**- "काव्य दोषों से रहित हो, ओज आदि गुणों से युक्त हो, अलंकार हों या न भी हों।" "तद् दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि।"
३. **विश्वनाथ के अनुसार**-" रस से युक्त वाक्य ही काव्य है।" "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"।
४. **पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार**- "रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द काव्य है।" "रमणीयार्थ-प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"।
५. **वामन के अनुसार**- "रीतिरात्मा काव्यस्य।" "रीति काव्य की आत्मा है।"
६. काव्यस्यात्मा ध्वनिः, वक्रोक्तिः काव्य-जीवितम्।

इस प्रकार, सार्थक शब्द ही काव्य है, जिसके मूल में रस रहता है और अलङ्कार, रीति, गुण आदि उसके सहायक होते हैं।

पाश्चात्य विचारकों का मत-

१. **अरस्तु के अनुसार** - "अनुकृति ही काव्य है।"
२. **शेक्सपीयर के अनुसार** - "काव्य में कल्पना की प्रधानता है।"
३. **वर्ड्सवर्थ के अनुसार** - "काव्य भाषा-प्रधान है।"
४. **कॉलरिज के अनुसार** - "काव्य भाषा का चमत्कार मात्र है।"

५. **कार्लाइल के अनुसार** – "काव्य संगीतमय विचार है।"
६. **मैथ्यू आर्नल्ड के अनुसार**– "कविता जीवन की समालोचना है।"
७. **प्रो० विल्सन के अनुसार** – "कविता बुद्धि और भावना का मिश्रण है।"

इस प्रकार काव्य में बुद्धि, भाव, कल्पना और कला या शैली की प्रधानता होना चाहिये।

हिन्दी के आचार्यों का मत–

१. **पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी के अनुसार**– "सादगी, असलियत और जोश कविता के गुण हैं।
२. **गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार**–"कविता मनुष्य के व्यक्तित्व का प्रकाशन है।"
३. **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार**– "कविता मानवहित और लोकहित के लिए है।"
४. **मुं.प्रेमचन्द के अनुसार**– "कविता जीवन की आलोचना है।"

इस प्रकार, सभी परिभाषाओं को देखने पर निष्कर्ष निकलता है कि काव्य में भाव–पक्ष प्रमुख होता है। भाव–पक्ष और कला–पक्ष दोनों का समन्वय होता है, यथा–

"गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न"

अर्थात् शब्द और अर्थ के मिलन को ही काव्य कहा जाता है।

काव्य के भेद – काव्य के मुख्यतः तीन भेद होते हैं–

(१) **पद्य–काव्य** – प्रबन्ध–महाकाव्य, एकार्थ काव्य, खण्ड काव्य, मुक्तक और गीति।
(२) **गद्य–काव्य** – निबन्ध, कहानी, नाटक, एकांकी, उपन्यास (गल्फ)।
(३) **मिश्र या चम्पू–काव्य**– गद्य और पद्य का मिश्रित रूप।

हिन्दी में काव्य शब्द केवल कविता के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः काव्य के प्रमुख तीन रूप होते हैं–

(१) प्रबन्ध –काव्य। (२) खण्ड–काव्य। (३) मुक्तक–काव्य या गीति–काव्य।

(१) प्रबन्ध–काव्य की विशेषताएँ–

(१) प्रबन्ध–काव्य में आरम्भ से अन्त तक कथा रहती है।
(२) कथात्मकता प्रबन्ध–काव्य का अनिवार्य गुण है।
(३) प्रबन्ध–काव्य के पद, अर्थ की दृष्टि से परस्पर आश्रित रहते हैं।

प्रबन्ध–काव्य के तीन भेद होते हैं–

(१) महाकाव्य, (२) खण्डकाव्य, (३) आख्यानक गीतियाँ।

(१) **महाकाव्य की विशेषताएँ**– आचार्यों ने महाकाव्य के लक्षणों का विशद विवेचन किया है। कतिपय लक्षण इस प्रकार हैं–

(१) महाकाव्य सर्गबद्ध होता है, कम से कम आठ सर्ग।
(२) महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक, काल्पनिक और मिश्रित (इतिहास और कल्पना) होता है।
(३) महाकाव्य में जीवन का सर्वांगीण चित्रण होता है– किसी व्यक्ति के जीवन की आदि से अन्त तक की घटनाओं का चित्रण होता है।
(४) महाकाव्य का नायक स्वभाव की दृष्टि से धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीर–ललित और धीर–प्रशान्त में से कोई एक होता है।
(५) महाकाव्य में श्रृंगार, करुण, शान्त और वीर रसों में से कोई एक प्रधान रस और शेष रस गौण रूप में रहते हैं।
(६) महाकाव्य का उद्देश्य महान् होता है।
(७) महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में अलग–अलग छन्दों का प्रयोग होता है।
(८) महाकाव्य की भाषा–शैली गम्भीर, सहज और स्वाभाविक होनी चाहिए।

पाश्चात्य–मत–

पाश्चात्य विचारकों ने महाकाव्य की निम्नांकित विशेषताएँ निर्धारित की हैं–

(१) महाकाव्य की कथा त्रासदी के अनुरूप होना चाहिए।
(२) महाकाव्य में कोई एक महान् कार्य या विषय होना चाहिये।
(३) महाकाव्य का नायक सज्जन, सम्पन्न और प्रभावशाली होना चाहिए।
(४) महाकाव्य में प्रासंगिक वर्णन भी होना चाहिये।
(५) महाकाव्य में जाति-विशेष का उल्लेख होना चाहिये।
(६) महाकाव्य में अतिमानवीय शक्ति के पात्र-अर्थात् देवता या साधारण मनुष्य से अधिक शक्ति-सम्पन्न होना।
(७) महाकाव्य में कथानक की गति, जहाँ तक सम्भव हो, वक्र होनी चाहिए।

हिन्दी के प्रसिद्ध महाकाव्य- पृथ्वीराज रासो (चन्दवरदाई कृत), पद्मावत (मलिक मुहम्मद जायसी कृत) रामचरितमानस (गोस्वामी तुलसीदास कृत) प्रिय-प्रवास (अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" कृत) साकेत (राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त कृत) कामायनी (जयशंकरप्रसाद कृत) कुरुक्षेत्र (राष्ट्रकवि रामधारीसिंह 'दिनकर' कृत) लोकायतन (सुमित्रान्दन पन्त कृत) मूकमाटी (आचार्य विद्यासागरजी कृत)।

(२) **खण्ड-काव्य-** यह महाकाव्य का लघु रूप होता है। इसमें जीवन के किसी एक पक्ष का विवेचन किया जाता है। अर्थात् जीवन के "एक मार्मिक-प्रसंग" का विवेचन खण्ड-काव्य का लक्ष्य होता है। इसकी निम्नांकित विशेषताएँ हैं-
(१) खण्ड-काव्य सर्गबद्ध हो सकता और नहीं भी।
(२) सर्ग पाँच से अधिक नहीं होना चाहिए।
(३) नायक महाकाव्य के समान होना चाहिए।
(४) प्रासंगिक वर्णन भी होना चाहिए।
(५) कथानक का आकार छोटा होना चाहिए।
(६) एक ही छन्द रहना चाहिए।
(७) रस, भाषा-शैली महाकाव्य के समान होना चाहिए।

हिन्दी के प्रसिद्ध खण्ड-काव्य-पार्वती मंगल (तुलसीदास), पंचवटी (मैथिलीशरण गुप्त), जयद्रथ-वध (मैथिलीशरण गुप्त), पथिक (रामनरेश त्रिपाठी), उद्धव-शतक (हरिऔध), हल्दीघाटी (श्यामनारायण पाण्डेय), कदम-कदम बढ़ाये जा (गोपालप्रसाद व्यास)

आख्यानक गीतियाँ - ये वास्तव में पद्यबद्ध कहानियाँ हैं। इनमें गीतात्मकता और नाटकीयता का समावेश रहता है। यथा-झाँसी की रानी (सुभद्राकुमारी चौहान), रंग में भंग (मैथिलीशरण गुप्त) आदि।

(३) **मुक्तक-काव्य-** मुक्तक स्वतन्त्र पद्य-रचना है। इसमें एक ही भाव या विचार व्यक्त होता है। इसकी निम्नांकित विशेषताएँ हैं-
(१) **पूर्णता-** मुक्तक-काव्य अपने आप में पूर्ण होता है।
(२) **अनिबद्धता-** पूर्ण होता है, किसी प्रसंग या छंद के बंधन से मुक्त होता है। मुक्तक काव्य अपने आपमें सर्वांगीण होता है।
(३) **छन्द की एकता-** मुक्तक में जीवन के मार्मिक अंशों का चित्रण होता है। इसलिए इसमें अनेक छंदों की आवश्यकता नहीं रहती अपितु जहाँ तक सम्भव हो एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिये।
(४) **लाक्षणिक प्रयोग**-मुक्तक काव्य में गागर में सागर भरना होता है। अतः मुक्तक की भाषा-शैली, शब्द-योजना और भावना लाक्षणिक होती है।
(५) **चमत्कार उत्पन्न करने की क्षमता**-मुक्तक काव्य रचना में यह आवश्यक है कि उसमें जो कुछ लिखा जाये वह अत्यधिक चमत्कार उत्पन्न करने वाला हो।

प्रमुख मुक्तक काव्य- बिहारी-सतसई (बिहारी द्वारा रचित), घनानन्द कवित्त (घनानन्द द्वारा रचित), दोहावली (तुलसी कृत), रहीम के दोहे (रहीम कृत), कबीर की साखी, वृन्द

के दोहे, कवित्त, सवैया आदि। आधुनिक कवियों में प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, गुप्त, नवीन आदि के गीत।

प्रबन्ध काव्य एवं मुक्तक काव्य में अन्तर

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार– "यदि प्रबन्ध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक काव्य एक चुना हुआ गुलदस्ता है।"

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के अनुसार– "प्रबन्ध काव्य यदि कोई रसीला फल है, जिसका रसास्वादन छिलके, रेशे और बीज आदि निकालने पर ही किया जा सकता है, तो मुक्तक या प्रगीत रचना उसी फल का द्रव रस है, जिसे हम तत्काल घूँट–घूँट पी सकते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि–

(१) प्रबन्ध–काव्य में कथात्मकता होती है; जबकि मुक्तक काव्य में किसी एक भाव, विचार या कल्पना का चित्रण रहता है।

(२) प्रबन्ध या महाकाव्य में मानव–जीवन का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जाता है; जबकि मुक्तक काव्य में जीवन के अत्यन्त मार्मिक प्रभावशाली प्रसंग का चित्र प्रस्तुत किया जाता है।

(३) प्रबन्ध काव्य में अर्थ की दृष्टि से प्रत्येक पद एक दूसरे पर आश्रित रहता है; जबकि मुक्तक काव्य में प्रत्येक पद अर्थ की दृष्टि से पूर्ण और स्वतन्त्र होता है।

महाकाव्य एवं खण्ड–काव्य में अन्तर

(१) महाकाव्य में नायक के जीवन का विस्तृत वर्णन रहता है, जबकि खण्ड–काव्य में किसी एक घटना का।

(२) महाकाव्य में अनेक सर्ग (खण्ड, अध्याय) होते हैं, जबकि खण्ड–काव्य में एक ही सर्ग होता है।

(३) महाकाव्य में प्रमुख कथा के साथ–साथ अन्य प्रासंगिक कथायें भी होती हैं; जबकि खण्ड–काव्य में केवल एक ही कथा होती है, प्रासंगिक नहीं।

महाकाव्य जातीय जीवन और सामाजिक चेतना के आकलन का सांस्कृतिक प्रयास होता है। इस दृष्टि से यदि महाकाव्य की महत्ता पर विचार किया जाये तो यह सर्वोपरि काव्य रूप सिद्ध होता है। वैसे भी शिल्पगत वैशिष्ट्य एवं जीवन–दर्शन सम्बन्धी उपलब्धियों के कारण महाकाव्य में महार्घता का समाहार अनिवार्यतः होता है। भारतीय काव्य–परम्परा में आर्यग्रन्थ "रामायण" और "महाभारत" तथा संस्कृत के श्रेष्ठ महाकाव्य कुमार–सम्भव, रघुवंश, किरातार्जुनीय, शिशुपाल–वध और नैषध चरित हैं। हिन्दी के प्राचीन महाकाव्यों में (प्रबन्ध काव्य) "आल्हाखण्ड", पृथ्वीराज रासो, आदि के नाम प्रमुख हैं। आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में कतिपय के नाम इस प्रकार हैं–रामचरितमानस, रामचन्द्रिका, रामचरित चिन्तामणि, प्रिय–प्रवास, साकेत, कामायनी, वैदेही–वनवास, कृष्णायन, साकेत–संत, दैत्य–वंश, रावण, पार्वती, रश्मिरथी, एकलव्य, कुरुक्षेत्र, अंगराज, उर्मिला, तारकवध, सेनापति कर्ण, नल–नरेश, उर्वशी, लोकायन तथा संत–कवि जैनाचार्य श्री विद्यासागर कृत "मूकमाटी"।

"मूकमाटी" आचार्यश्री की अद्यतन प्रौढ़तम काव्य–कृति है। इसे अध्यात्म एवं रूपक महाकाव्य कहना समीचीन प्रतीत होता है। यह महाकाव्य विश्व–साहित्य की एक अनुपम कड़ी है। मूकमाटी एक रूपकात्मक अध्यात्म महाकाव्य है, अथवा आध्यात्मिक रूपक महाकाव्य है। इसका महाकाव्यात्मक अनुशीलन करने के पूर्व महाकाव्य के लक्षण, उसके स्वरूप से परिचित हुए बिना विवेचन करना न्याय–संगत प्रतीत नहीं होता।

महाकाव्य की कोई सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है, क्योंकि विभिन्न युगों में उसका स्वरूप परिवर्तित होता रहा है। महाकाव्य युगीन–जीवन–चेतना को आत्मसात् करने के कारण प्रगतिशील रचना है। महाकाव्य का सृजन एक सांस्कृतिक प्रयास है। जिस प्रकार संस्कृति का मूल रूप अखण्डित रहते हुए भी उसमें युगानुरूप परिवर्तन होते रहते हैं, उसी प्रकार महाकाव्य की काव्य रूपात्मक प्रभुता के अखण्ड होते हुए भी उसकी प्रवृत्तियों और परम्पराओं में विकास–क्रम निरन्तर गतिमान रहता है। महाकाव्य व्यष्टि जीवन की अभिव्यक्ति न होकर, जातीय जीवन का

चित्र होता है, जिसमें सामाजिक जीवन की सामयिक परिस्थितियों और विश्व–जीवन की प्रचलित प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्बन स्वतः ही हो जाता है।

पाश्चात्य और पौर्वात्य देशों के साहित्यशास्त्रियों ने अद्यावधि महाकाव्य की जो परिभाषायें निर्धारित की हैं, उनका आदर्श उनके समय से पूर्व रचे महाकाव्य रहे हैं। यथा–अरस्तु के लिए "इलियड" और "ओडेसी" तथा भारतीय काव्याचार्यों के लिए "रामायण" और "महाभारत"। किन्तु प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्धारित परिभाषाएँ–आधुनिक युग के महाकाव्यों पर लागू नहीं होतीं, क्योंकि शैली, रूप, प्रवृत्ति और परम्परा सभी दृष्टियों से महाकाव्य–रचना परिवर्तनोन्मुखी रही है, जिसे विकास की परम्परा संज्ञा देना युक्ति–संगत है।

किसी काव्य–ग्रन्थ को महाकाव्य की मान्यता उसके स्वरूप, आकार–प्रकार, प्रवृत्ति, उद्देश्य और लोकप्रसिद्धि की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती है। परम्परागत महाकाव्यों के लक्षण निम्नानुसार हैं–

भारतीय–मत–

आचार्य भामह के अनुसार–"महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है, जिसका आकार बड़ा होना चाहिये। उसकी कथा का आधार महान् चरित्र, अलंकारयुक्त शिष्ट भाषा का प्रयोग, राजदरबार, दूत, आक्रमण, सन्धि, युद्ध आदि का विस्तृत वर्णन तथा अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चतुर्वर्ग फल–प्राप्ति का विधान होना चाहिये।"

आचार्य दण्डी ने भामह द्वारा कथित लक्षणों के साथ महाकाव्य के बहिरंग पक्ष पर बल दिया। जैसे–वर्णन–वैविध्य, अलंकृति, चमत्कार आदि। **रुद्रट** ने महाकाव्य के चार प्रमुख लक्षणों–महत् उद्देश्य, महत् चरित्र, महती घटना और समग्र जीवन का रसात्मक चित्रण–का निर्देश दिया। **कविराज जगन्नाथ** ने महाकाव्य की बड़ी व्यापक एवं स्पष्ट परिभाषा दी है–यथा–ऐतिहासिक कथानक, सर्गबद्ध–रचना, सन्धि निर्वाह, उच्चकुलीन धीरोदात्त नायक, श्रृंगार, वीर, शान्त रसों में से कोई एक रस प्रधान अन्य गौण, चतुर्वर्ग फल–प्राप्ति–(अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष),सर्ग–संख्या–आठ से अधिक, छन्द–विधान, मंगलाचरण, नमस्कार, आशीर्वचन से काव्यारम्भ, सज्जन–स्तुति, दुर्जन–निन्दा, सन्ध्या, ऊषा, सूर्य, रजनी, प्रदोष, प्रातः, मध्याह्न, ऋतु–वर्णन, पर्वत, सागर, सरिता, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, पुर, यज्ञ, यात्रा आदि का सागोपांग–वर्णन तथा महाकाव्य एवं सर्गों का नामकरण आदि होना चाहिये।

साहित्यदर्पणकार द्वारा निर्दिष्ट इन लक्षणों का निर्वाह हिन्दी के महाकाव्यों में होता रहा, किन्तु दुर्भाग्य यह है कि हिन्दी का काव्य संस्कृत काव्य का अंधानुकरण करता है। जबकि उसके अधिकांश मूल्यवान् साहित्य का स्रोत प्राकृत–अपभ्रंश है। आधुनिक युग की कृतियों में अनेक लक्षण उपेक्षित हो गये हैं। यथा–मंगलाचरण, उच्चकुलीन नायक की परिकल्पना, सर्ग–संख्या, संगति, छंद–परिवर्तन आदि का अनुपालन।

पाश्चात्य मत–

पाश्चात्य–साहित्य–शास्त्र में महाकाव्य को Epic "एपिक" कहा गया है। पाश्चात्य विद्वानों में अरस्तु ने "पोलिटिक्स"नामक ग्रन्थ में "इलियड" और "ओडेसी" के आधार पर महाकाव्य का विवेचन किया है। आज भी काव्यालोचन के आधार–स्तम्भ यही लक्षण माने जा रहे हैं–ऐतिहासिक कथानक, पूर्ण गम्भीर और उदात्त कार्य व्यापार की अनुकृति, अतिप्राकृत और अलौकिक तत्वों का समाहार, आदि से अन्त तक एक ही छन्द का प्रयोग, महान् पात्र–योजना, समग्र–जीवन–चित्रण, सुन्दर, सरल, भावानुगामी भाषा, आनन्द–प्राप्ति महाकाव्य का उद्देश्य होना चाहिये।

फ्रेञ्च विद्वान् ली वस्सु के अनुसार – "महाकाव्य प्राचीन घटनाओं का छन्दोबद्ध रूपक है।"

हॉब्स के अनुसार–"कथात्मक कविता महाकाव्य है।"

सुप्रसिद्ध समालोचक बाबरा के अनुसार–"सर्वसम्मति से महाकाव्य वह कथात्मक काव्य–रूप है, जिसका आकार वृहद् होता है।जिसमें महत्त्वपूर्ण और गरिमायुक्त जिसके कुछ

चरित्रों की क्रियाशील जीवन–कथा पढ़ने से हमें विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है, क्योंकि उसकी घटनायें और पात्र हमारे भीतर मनुष्य की महानता, गौरव और उपलब्धियों के प्रति दृढ़ आस्था उत्पन्न करते हैं।

समष्टि रूप से पाश्चात्य आचार्यों ने महाकाव्य की निम्नांकित विशेषतायें निरूपित की हैं–महाकाव्य वीर–काव्य है, उसमें लोक–विश्रुत और महत्त्वपूर्ण कथानक, जातीय–जीवन का व्यापक–चित्रण, असाधारण प्रतिभा और व्यक्तित्व–सम्पन्न नायक, शौर्य, वीर्य और पराक्रम युक्त गुण, राष्ट्रीय जीवन का सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व, घटना–बाहुल्य, वर्णन–वैविध्य, ओजपूर्ण, गरिमापूर्ण शैली, एक ही छन्द विधान, महत् उद्देश्य, जीवन के शाश्वत मूल्यों की प्रतिष्ठा–यथा–असत् पर सत् की विजय और समसामयिक जीवन का प्रेरणा–स्रोत होना चाहिये।

आधुनिक हिन्दी समीक्षकों में **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने महाकाव्य के स्वरूप पर सविस्तार प्रकाश डाला है/उन्होंने महाकाव्य में केवल चार तत्त्वों को महत्त्वपूर्ण माना है–इतिवृत्त, वस्तु–व्यापार–वर्णन, भाव–व्यजंना, तथा संवाद। **डॉ० श्यामसुन्दरदास** ने महाकाव्य में महत् उद्देश्य, उदात्त आशय, संस्कृति के चित्रण आदि का उल्लेख किया है। उन्होंने महाकाव्य का विषय आत्मा का उदात्त आशय, सभ्यता तथा संस्कृति के संघर्ष तथा समाज की उद्वेगजनक स्थिति की अवतारणा माना है।

बाबू गुलाबराय एम. ए. के मतानुसार–"महाकाव्य वह विषय–प्रधान महाकाव्य है, जिसमें अपेक्षाकृत बड़े आकार में जाति में प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यों द्वारा जातीय भावनाओं, आदर्शों और आकांक्षाओं का उद्घाटन किया जाता है।"

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने महाकाव्य के तीन प्रमुख लक्षण माने हैं–प्रथम रचना का प्रबन्धात्मक या सर्गबद्ध होना, द्वितीय शैली का गाम्भीर्य और तृतीय उसमें वर्णित विषय की व्यापकता और महत्त्व।

डॉ. नगेन्द्र ने महाकाव्य के निम्नांकित आधारभूत तत्त्व निरूपित किये हैं–(१) उदात्त कथानक, (२) उदात्त कार्य या उद्देश्य, (३) उदात्त चरित्र, (४) उदात्त भाव और उदात्त शैली अर्थात् औदात्त ही महाकाव्य का प्राण है। डॉ० नगेन्द्र द्वारा निर्देशित लक्षण महाकाव्यालोचन के स्थायी मानदण्ड स्वीकार किये जा सकते हैं।

डॉ० प्रतिपालसिंह के शब्दों में–"महाकाव्य–विषय–प्रधान रुचिकर रचना है, जिसमें जातीय संस्कृति के किसी महाप्रवाह, सभ्यता के उद्‌गम–संगम, युग–प्रवर्तक–संघर्ष, महत् चरित्र के उत्कर्ष, समाज की उद्वेगजनक स्थिति, आत्मा के किसी उदात्त आशय अथवा रहस्य का उद्घाटन किया जाये।"

डॉ० गोविन्दराम शर्मा के अनुसार– "महाकाव्य एक ऐसी छन्दोबद्ध प्रकथनात्मक रचना होती है, जिसमें विषय की व्यापकता और नायक की महानता के साथ–साथ कथा–वस्तु की एक–सूत्रता, छलकता हुआ रस–प्रवाह, वर्णन की विशदता, उदात्त भाषा–शैली, जीवन का यथासाध्य सर्वांगीण चित्रण और जातीय भावनाओं तथा संस्कृति की सुन्दर अभिव्यक्ति हो।"

श्री श्यामनन्दन किशोर के अनुसार–"महाकाव्य मर्मस्पर्शी घटनाओं पर आधारित एक कवि की ऐसी छन्दबद्ध कृति है, जिसमें मानव–जीवन की किसी ज्वलन्त समस्या का व्यापक प्रतिपादन, किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति या जातीय संस्कृति के महाप्रवाह, उद्‌भावन, उदात्त वर्णन शैली, व्यंजक–भाषा, पूर्ण रसात्मकता और उच्च कोटि के शिल्पविधान द्वारा किया जाता है और जिसका नायक किसी भी लिंग, जाति या वंश का होकर भी अपने गुणों से कवि के आदर्शों को मूर्तिमान् करने वाला होता है।"

हिन्दी समालोचक एवं शोध–कर्मियों के अतिरिक्त काव्य–कर्त्ताओं (कवियों) ने भी महाकाव्य के लक्षणों को निबद्ध करने का प्रयास किया है–**महाकवि हरिऔध के अनुसार**–महाकाव्य की उचित परिभाषा यह है कि जिसमें वास्तव में महाकवित्व पाया जाये और जिसका एक ऐसा महत् उद्देश्य हो जो देश, जाति, समाज के भावों का दर्पण हो, जिसमें ऐसे

विचारों और कल्पनाओं का चित्रण हो जो किसी लोकसमूह के लिए कल्पद्रुम का काम दे सके........थोड़े ही सर्गों का ग्रन्थ क्यों न हो, यदि उसमें व्यञ्जना की प्रधानता है, भावुकता उसमें छलकती मिलती है, महाकवि का कर्म उसमें देखा जाता है तो वह अवश्य ही महाकाव्य कहा जा सकेगा, क्योंकि ग्रन्थ का महत्त्व ही उसकी महत्ता का कारण हो सकता है। श्री हरिऔधजी ने महाकाव्य में सर्ग-संख्या से अधिक महत्त्वपूर्ण भाव-औदात्त और कवि-कर्म माना है।

कविवर सुमित्रानन्दन पंत ने महाकाव्य के सम्बन्ध में लिखा है-"महाकाव्य मानव-सभ्यता के संघर्ष तथा सांस्कृतिक विकास का जीवन्त पर्वताकार दर्पण होता है, जिसमें अपने मुख को देखकर मानवता स्वयं को पहचानने में समर्थ होती है।"

श्री रामधारीसिंह"दिनकर"ने महाकाव्य के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है-"महाकाव्य की रचना मनुष्य को विफल करने वाली अनेक भाव-धाराओं के बीच सामञ्जस्य लाने का प्रयास है। महाकाव्य की रचना समय के परस्पर विरोधी प्रश्नों के समाधान की चेष्टा है।.....विश्व के महाकाव्य मनुष्य की प्रगति के मार्ग में मील के पत्थर के समान होते हैं। वे व्यंजित करते हैं कि मनुष्य किस युग में कहाँ तक प्रगति कर सका है।"

कवि श्री गोपालदास नीरज, ने महाकाव्य की उद्भावना के सम्बन्ध में लिखा है-"जब कवि का मानस-चषक भाव के रस से इतना भर जाता है कि वह आसव उसमें से छलक-छलक पड़ता है, तब गीत का जन्म होता है, लेकिन जब कवि की दृष्टि रूप से ऊपर उठकर लोक-मानस की भूमि "पर" से तादाम्य करने का प्रयास करती है, तब महाकाव्य का जन्म होता है। एक में अपनी रचना का व्यक्ति स्वयं होता है और दूसरी में उसका लक्ष्य समाज और संसार होता है। इसलिए जहाँ तक गीत में तीव्र संवेदनशीलता होती है, वहाँ प्रबन्धकाव्य में एक विशद् व्यापकता के दर्शन होते हैं। महाकाव्य की महान् योजना के लिए एक स्पष्ट जीवन-दर्शन, सूक्ष्म-ज्ञान-दृष्टि, अनुभूतियों की एक तानता, भावना, बुद्धि और कल्पना का समीचीन सन्तुलन आवश्यक होता है।"

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने महाकाव्य की परिभाषा व्यक्त करते हुये लिखा है-"मन में जब एक महत् व्यक्ति का उदय होता है, सहसा जब एक महापुरुष कवि के कल्पना-राज्य पर अधिकार आ जमाता है, मनुष्य चरित्र का उदार महत्त्व, मनश्चक्षुओं के समक्ष अधिष्ठित होता है तब उसके उन्नत भावों से उद्दीप्त होकर, उस परम पुरुष की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने के लिए कवि भाषा का मन्दिर निर्माण करते हैं। उस मन्दिर की भित्ति पृथ्वी के गम्भीर अन्तर्देश में रहती है और उसका शिखर मेघों को भेद कर आकाश में उठता है। उस मन्दिर में जो प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है, उसके देवभाव से मुग्ध और पुष्प किरणों से अभिभूत होकर नाना दिग्देशों से आ-आ कर लोग उसे प्रणाम करते हैं। इसीको कहते हैं-महाकाव्य।" श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने महाकाव्य के लिए विराट् चरित्र कल्पना को प्रमुख अंग माना है।

समग्र विवेचन के बाद, महाकाव्य को इन शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है-**"महाकाव्य वह महाकाव्य रूप है, जिसमें व्यापक-कथानक, विराट् चरित्र, कल्पना, गम्भीर अभिव्यंजना-शैली, विशिष्ट शिल्प-विधि, और मानवतावादी जीवन-दृष्टि से उसका रचयिता युग-जीवन के उन्नत बोध को सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर प्रतिफलित करता है। संक्षेप में; श्रेष्ठ महाकाव्य की रचना मानवता के मंगलमय आख्यान और लोकमानस की चेतना के आकलन का सांस्कृतिक प्रयास होती है।"**

सत्य तो यह है कि महाकाव्य को सार्वकालिक, सार्वदेशिक एवं सर्वथापूर्ण परिभाषा में बाँधना कठिन है, क्योंकि युग-जीवन की परिस्थितियों और सामाजिक परम्पराओं के अनुसार ही महाकाव्य के स्वरूप, लक्षण, तत्त्व व मान्यताओं में परिवर्तन होता रहता है। फिर भी उपर्युक्त परिभाषा में महाकाव्य के स्वरूप को व्यापकतम परिवेश में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है।

महाकाव्य के रूप-विधायक तत्त्व

महाकाव्य के रूप-विधायक तत्त्वों से अभिप्राय उसके रचनात्मक तत्त्वों से है। महाकाव्य की परिभाषाओं में पाश्चात्य-पौर्वात्य तथा प्राचीन और नवीन आचार्यों ने रचना के विभिन्न उपकरणों का उल्लेख किया है। कुछ आचार्यों ने कथा-तत्त्व और चरित्र-योजना को महत्त्व दिया है, तो कतिपय आचार्यों ने रचना-शिल्प और उद्देश्य की महत्ता को स्वीकार किया है। हिन्दी-साहित्य-जगत् में महाकाव्य की रूप-रचना का प्रश्न बड़ा विवादास्पद बना हुआ है। रूप-विधायक तत्त्वों की अनिश्चितता के कारण यह कहना बड़ा कठिन है कि कौनसी काव्य-कृति महाकाव्य है और कौनसी नहीं। उदाहरणार्थ **डॉ. शम्भूनाथसिंह** ने पृथ्वीराज रासो, पद्मावत, आल्हाखण्ड, रामचरितमानस, और कामायनी को ही महाकाव्य माना है। **डॉ. गोविन्द राम शर्मा** ने इन पाँचों के अलावा प्रिय-प्रवास, साकेत, कृष्णायन, वैदेही-वनवास, और साकेत-संत को भी महाकाव्य की संज्ञा प्रदान की है। **डॉ. प्रतिपालसिंह, डॉ. श्यामनन्दन किशोर, डॉ. श्यामसुन्दर व्यास** आदि ने कुरुक्षेत्र, रावण, दैत्य-वंश, एकलव्य, तारक-वध, नूरजहाँ, विक्रमादित्य, सिद्धार्थ, वर्धमान, अंगराज, पार्वती, शीर्षक काव्य-ग्रन्थों को भी महाकाव्य स्वीकार किया है।

आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट समस्त लक्षणों का समाहार निम्नांकित चार शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है, जिन्हें महाकाव्य रचना के रूप-विधायक तत्त्व अभिधान भी दिया जा सकता है - (१) लोकप्रख्यात कथानक, (२) उदात्त चरित्र-सृष्टि, (३) विशिष्ट रचना-शिल्प और,(४) महत् उद्देश्य और जीवन-दर्शन।

(१) लोक-प्रख्यात कथानक - महाकाव्य-सृजन का सर्वप्रथम एवं अनिवार्य तत्त्व कथानक है। कथानक की दो विशेषतायें अनिवार्य हैं-ख्याति और सुसंगठन। विषय-वस्तु की व्यापकता एक सामान्य विशेषता है। कथावस्तु के स्रोत इतिहास, पुराण, समसामयिक घटना-चक्र और कवि-कल्पना। कथा-वस्तु का सुसंगठन अनिवार्य है। कथा-संगठन के लिए सर्गों का विधान है, किन्तु सर्गों की संख्या सुनिश्चित नहीं है। कथा-वस्तु व्यापक एवं सम्पूर्ण जीवन को अभिव्यक्त करने में सक्षम होनी चाहिए। कथानक जातीय जीवन और समूह चेतना को साकार करने की शक्ति और क्षमता को संधारण करने वाला होना चाहिये। संक्षेप में, लोक-प्रसिद्ध, सुसंगठन और व्यापकता महाकाव्य की कथावस्तु की प्रमुख विशेषता कही जा सकती है।

(२) उदात्त चरित्र-सृष्टि - महाकाव्य-सृजन का दूसरा, प्रमुख तत्त्व चरित्र-सृष्टि है। कथानक में अनेक अच्छे-बुरे पात्र होते हैं। महाकाव्यकार का दायित्व है कि वह असद् पात्रों पर सद् पात्रों की विजय प्रदर्शित करे। पात्रों के चरित्र-चित्रण में महाकाव्यकार का दृष्टिकोण निरपेक्ष, निःस्पृह, और पूर्वाग्रह से मुक्त होना चाहिए। महाकाव्य के नायकत्व में मानवीय चरित्र, महान् लक्ष्य की सिद्धि के लिए प्रयत्नशील होना और जातीय जीवानादर्शों की प्रतिस्थापना करना आदि बातें आवश्यक हैं।

(३) विशिष्ट रचना-शिल्प- प्रत्येक साहित्यिक रचना का एक निश्चित शिल्प होता है, जिसके आधार पर उसे आकार-प्रकार दिया जाता है। महाकाव्यकार को महाकाव्य के स्वरूप विधायक उपकरणों का संयोजन विशेष विधि से करना होता है। रचना-शिल्प के दो पक्ष होते हैं-अन्तरंग और बहिरंग। महाकाव्य के अन्तरंग पक्ष (भावपक्ष) का निर्माण रसात्मकता द्वारा होता है और बहिरंग पक्ष (कला-पक्ष) के निर्माण में भाषा,- शैली, छंद-विधान, वर्णन एवं चित्रण आदि का योगदान होता है।

(अ) अन्तरंग पक्ष- साहित्यकारों ने रस को काव्य की आत्मा माना है। महाकाव्य के विशाल कलेवर में रस का वेगवान अमित प्रवाह होना चाहिये। श्रृंगार, वीर और शान्त रसों में से किसी एक की प्रधानता और अन्य रस गौण होना चाहिए। किन्तु आज यह मान्यता आवश्यक नहीं रही। कोई भी रस प्रधान रस हो सकता है। रसानुभूति पाठकों के हृदय में भावोच्चता या महत् प्रभाव

की जनक होती है। मूलभाव और संवेदना मानव-मात्र में एक-सी होती है। पात्रों के क्रिया-व्यापारों और घटना-प्रवाहों से अनुभूति का तादात्म्य रस की भूमिका पर ही हो सकता है। भाव-चित्रण रसात्मकता द्वारा ही सम्भव है। अतएव रसात्मकता महाकाव्यकार की प्रतिभा का द्योतक है।

(अ) बहिरंग पक्ष-

महाकाव्य के बहिरंग पक्ष में निम्नांकित तत्त्व समाहित होते हैं-

(१) वस्तु-वर्णन- महाकाव्य में वस्तु-वर्णन वैविध्यपूर्ण होना चाहिए। युग-जीवन का समग्र-चित्र जीवन की अनेक रूपता की अभिव्यञ्जना, प्रकृति के विविध रूप, नाना भावों की मनोरम झाँकियों की अभिव्यक्ति आदि का भावपूर्ण, मनोरम और मार्मिक वर्णन, महाकाव्यकार के काव्यकौशल का गरिमापूर्ण प्रतीक है।

(२) कल्पना-शक्ति- प्रौढ़ कवि-कल्पना महाकाव्य की जन्मदात्री होती है। महाकाव्यकार जीर्ण-शीर्ण-कथा सूत्रों को अपनी कल्पना-शक्ति से दीप्त कर जीवन, समाज और युग के परिसन्दर्भों में प्रस्तुत करता है। चरित्र-चित्रण, शिल्प-विधान और उद्देश्य-सिद्धि में कल्पना-शक्ति का योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

(३) गरिमापूर्ण भाषा-शैली- अन्य काव्य-रूपों की अपेक्षा महाकाव्य-सृजन-शैली का स्वरूप अधिक विशिष्ट और गरिमापूर्ण होता है। गुण, रीति, अलंकार, शब्द-शक्तियाँ, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि शैली-विधान के उपकरण हैं, किन्तु ये शैली के बाह्य रूप से सम्बद्ध हैं। शैली की व्यापकता, गम्भीरता, प्रौढ़ता उसकी अन्तरात्मा में निहित है। काव्य-चेतना की प्रबलता को सरल-भाषा, सामान्य अलंकृति एवं गम्भीर व्यञ्जना द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। शैली के स्वरूप का निर्माण कवि की सुदीर्घ काव्य-साधना का परिणाम होता है।

(४) छन्द-विधान- *महाकाव्य में, काव्यात्मक औदात्य के लिए छन्द-विधान अनिवार्य है।* आधुनिक महाकाव्यों में छन्द-परिवर्तन का अनुपालन नहीं किया गया है, फिर भी छन्द-वैविध्य से पाठकों की मनोवृत्ति का रमण और कवि-कौशल का परिचय अवश्य मिलता है।

(५) सर्ग-योजना- प्रबन्धत्व के सफल निर्वाह के लिए सर्ग-योजना अनिवार्य है। कथा-वस्तु के सम्यक् संयोजन और विभाजन के लिए सर्ग-योजना अपेक्षित है। कथावस्तु का विभाजन-समयों, काण्डों, पर्वों, प्रकाशों या अन्य शीर्षकों में भी हो सकता है। सर्गों की संख्या के सम्बन्ध में कोई निश्चित मत नहीं है। व्यापक कथावस्तु को समुचित खण्डों में विभाजित कर वर्णित किया जाता है।

(४) महत् उद्देश्य और जीवन-दर्शन - भारतीय काव्याचार्यों ने महाकाव्य का उद्देश्य चतुर्वर्ग-फल-प्राप्ति अर्थात् अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की सिद्धि तथा रसात्मकता माना है, किन्तु वर्तमान युग जीवन के सन्दर्भ में केवल इन्हें ही महाकाव्य का लक्ष्य नहीं माना जा सकता। महत् उद्देश्य का अभिप्राय महाकाव्यकार की अन्तरात्मा से किसी महान् प्रेरणा का आविर्भाव होना भी है। प्रेरणा का स्रोत जीवन की कोई घटना, परिस्थिति तथा वस्तु हो सकती है, किन्तु कवि का कौशल उस प्रेरणा-प्रभाव को विश्वव्यापी परिप्रेक्ष में रूपायित करने में है। प्रत्येक रचना सोद्देश्य होती है। काव्य-रचना केवल आत्मतोषी या 'स्वान्तः सुखाय' न होकर, जाति, समाज और विश्व-जीवन की मनः तुष्टि के लिए होना चाहिये। इस सन्दर्भ में **डॉ० माताप्रसाद गुप्त** का कथन सर्वथा उपयुक्त है- "मानवता को अशक्ति से शक्ति, अशान्ति से शान्ति और नीचे से ऊँचे ले जाना ही.....वस्तुतः महाकाव्य के अन्य लक्षणों की अपेक्षा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लक्षण माना जा सकता है। इसीमें उसकी वास्तविक महानता होना चाहिये"। महाकाव्य कही जाने वाली रचना में निम्नांकित बातें होना आवश्यक हैं-

(१) *मानवीय जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा।*
(२) *युगीन जीवनादर्शों की स्थापना।*
(३) सांस्कृतिक उत्थान में योगदान।
(४) समुन्नत विचार-दर्शन (उच्च विचार)।
(५) संजीवनी-शक्ति प्रदान करने की क्षमता।

१-मानवीय जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा- प्रत्येक काव्य-रचना की सार्थकता मानवता के मंगल-विधान में निहित है। मानव-जीवन के चिरन्तन-मूल्यों और शाश्वत सत्यों की व्यञ्जना महाकाव्य रचना की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। मानव-जीवन के स्थायी मूल्य-प्रेम, करुणा, क्षमा, शील, श्रद्धा, सत्य, सत्व, नय, अहिंसा आदि रहे हैं। ये जीवन-मूल्य केवल आध्यात्मिकता की सीमा में ही नहीं आते, बल्कि मानव-जीवन की विविधता के चित्रण में इन मूल्यों की प्रतिष्ठा का लक्ष्य होना चाहिये, क्योंकि व्यक्ति, जीवन के विराट् संघर्ष में इन मूल्यों को विस्मृत ही नहीं करता वरन् उपेक्षित भी करता है। अतः महाकाव्यकार को इन जीवन-मूल्यों की सत्ता सिद्ध करना ही चाहिये; तभी महाकाव्य विश्व-जीवन और सार्वभौम हो सकता है। मानव मात्र की धरोहर बनने के लिए महाकाव्य को जाति, समाज और राष्ट्र की सीमाओं का अतिक्रमण कर, मानवतावाद की प्रतिष्ठा की स्थापना करना चाहिये।

२-युगीन जीवनादर्शों की स्थापना- महाकाव्य युग की उपज होते हैं। इनमें कवियों की साधना, जातीय जीवन की विशेषताएँ और मानवता की प्रगति अभिव्यंजित होती है। प्रत्येक युग में जीवन के आदर्श स्थापित होते हैं। कभी वीरता, कभी भक्ति-साधना, तो कभी राष्ट्र-सेवा, परमार्थ, समाज-कल्याण, प्रेममय जीवन, समानता, सद्व्यवहार और आत्म-कल्याण जीवन के आदर्श स्वीकृत होते हैं। महाकाव्य में इन जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा होनी चाहिये। साथ ही, कुछ शाश्वत सत्यों और चिरन्तन मूल्यों से ही प्रत्येक युग में मानव-जीवन संचरित होता है। अतः इनके परिप्रेक्ष्य में ही जीवनादर्शों की प्रतिष्ठापना की जानी चाहिये। हमारे युग की प्रगति अतीत के प्रयत्नों का परिणाम तथा अनागत के प्रति आस्था का प्रतीक होनी चाहिये। महाकाव्य को विश्व-साहित्य की अमूल्य निधि तभी कहा जा सकता है, जब उसमें जातीय ही नहीं विश्व-जीवन के आदर्श साकार हो उठते हैं। आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में इस प्रवृत्ति के समुचित दर्शन होते हैं।

३-सांस्कृतिक उत्थान में योगदान - इस भौतिकवादी युग में काव्य-लेखन एक सांस्कृतिक प्रयत्न है। महाकाव्य में जाति, समाज, राष्ट्र और विश्व के सांस्कृतिक उत्कर्ष-अपकर्ष की विराट् भूमिका प्रस्तुत की जाती है। महाकाव्य कुछ हद तक देश का सांस्कृतिक इतिहास भी प्रस्तुत करता है। महाकाव्य में समग्र जीवन का चित्रण करते समय समाज-व्यवस्था का निरूपण, सभ्यता के विकास का वर्णन, राष्ट्रीय मर्यादाओं का स्वरूपाकन तथा पर्वों और परम्पराओं का आख्यान एक प्रकार से देश की सांस्कृतिक धरोहर ही है। महाकाव्य के पात्रों के संस्कार जातीय एवं राष्ट्रीय आचरण का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतः महाकाव्य-सृजन जातीय एवं सांस्कृतिक उत्थान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

४-समुन्नत विचार-दर्शन (उच्च विचार) "अनुभव, चिन्तन और साधना" जीवन-दर्शन के निर्माता हैं। जीवनगत प्रश्नों और समस्याओं का समाधान कवि के समुन्नत विचार-दर्शन में निहित है। कवि की वैयक्तिक अनुभूति, चिन्तन-मनन और साधना की सामाजिक परिणति उसकी कृति में अभिव्यंजित होती है। जीवन-दृष्टि ही कवि के विचार-दर्शन का अभिप्राय है। महाकाव्य में कवि की परम्परागत और प्रगतिशील जीवन दृष्टि दोनों अपेक्षित हैं।

परम्परागत जीवन-दृष्टि में कवि दार्शनिक प्रस्थापनाओं और मान्यताओं के आधार पर ईश्वर, जीव, मोक्ष, नियति, काल, भक्ति, वैराग्य, ज्ञान और धर्म आदि को अपनी कृति में समाहार करता है और प्रगतिशील जीवन-दृष्टि से दार्शनिक मान्यताओं की युग-सापेक्ष व्याख्या और युग-धर्म का निरूपण सामयिक सन्दर्भों - जैसे- समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्वभाव, कर्त्तव्य-परायणता, परमार्थ, आस्था, विश्वास, सहयोग, मानव-मंगल-साधना का महत्त्व आदि में करता है।

वैज्ञानिक युग की काव्य-सर्जना में बुद्धितत्त्व की प्रधानता होती है। काव्यकार मात्र भाव-प्रवण न होकर बुद्धिवादी कलाकार भी होता है। अस्तु महाकाव्यकार को लक्ष्य प्राप्ति हेतु एक समुन्नत विचार-दर्शन के आयोजन की अपेक्षा होती है। महाकाव्य एक संजीवनी शक्ति होती है, जो

युगों–युगों तक जीवित रखती है। महाकाव्य समय की घूर्णन गति से काल–कवलित तो क्या धूल–धूसरित भी नहीं होते।

इस प्रकार समग्र विवेचन के बाद, निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि लोकप्रख्यात कथानक, उदात्त चरित्र–सृष्टि, विशिष्ट रचना–शिल्प, महत् उद्देश्य और जीवन–दर्शन महाकाव्य सृजन के स्थायी और अनिवार्य स्तम्भ हैं। इन तत्त्वों को हम महाकाव्य सृजन के प्रतिमान और महाकाव्यालोचन के मानदण्ड कह सकते हैं।

महाकाव्य–सृजन गुरुतर कवि–कर्म है। महाकाव्य की रचना जातीय–जीवन और सामाजिक चेतना केआकलन का सांस्कृतिक प्रयास होती है। युग–युग की चेतना का नवजागरण, राष्ट्रीय जीवन का प्रतिबिम्ब, सांस्कृतिक–उन्नयन, सामाजिक अभ्युत्थान का संकल्प और कलात्मक औदात्त महाकाव्य–रचना के आधार-भूत प्रयोजन होते हैं। ऐसे महत् प्रयोजनों की सिद्धि प्रत्येक कवि का कर्म नहीं है। वही मनीषी कवि महाकाव्यकार के पद से गौरवान्वित होता है, जिसने अपने जीवन को काव्य की साधना और कला की उपासना को समर्पित कर दिया हो और जो असाधारण प्रतिभा का धनी हो। चिरन्तन मानवीय–मूल्य और आध्यात्मिक निष्ठा में, मानवतावादी जीवन–दृष्टि प्रदान करती है, जिससे कवि ऐसी कृति–सृजित करता है, जो न तो धूल–धूसरित होती है और न ही काल–कवलित, अपितु अपने अनुपम जीवन–दर्शन और कलात्मक औदात्त के आलोक, साहित्य–क्षितिज पर अपनी शाश्वत दीप्ति विकीर्ण करती हुई, जन–जीवन के लिए अक्षय–प्रेरणा का स्रोत बनी रहती है।

आलोच्य महाकाव्य "मूकमाटी" को इन्हीं मानदण्डों की कसौटी पर कसने का प्रयास किया जा रहा है। साहित्य–सृजन में वातावरण और प्रवृत्तियों का प्रमुख हाथ रहता है। साहित्य के मूल्यांकन में यह ध्यान रखना अति आवश्यक है कि किन परिस्थितियों और प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर कृतिकार ने कृति को जन्म दिया है, अन्यथा कृति के साथ न्याय नहीं होगा।

"मूकमाटी" आचार्य श्री विद्यासागर जी की अद्यतन प्रौढ़तम काव्यकृति है और इसे सर्वोत्कृष्ट विश्व-साहित्य की एक अनुपम कड़ी कहा जा सकता है। इसे अध्यात्म और रूपक महाकाव्य कहना अधिक समीचीन और सार्थक होगा। सन्त–कवि आचार्यश्री ने "माटी" जैसी अकिंचन, निरीह, पददलित और व्यथित–वस्तु को महाकाव्य की विषय–वस्तु बनाकर, उसकी करुण–वेदना और मुक्ति की कामना को मुखरित कर, अपनी सतत् साधनारत काव्य–प्रतिभा को उजागर किया है। धर्म, दर्शन और अध्यात्म जैसे दुरूह शब्दों को आधुनिक भाषा और मुक्त छन्द में निबद्ध कर, सुबोध बनाने का नया आयाम साहित्य–जगत् के लिए आचार्यश्री की अप्रतिम उपलब्धि है।

"मूकमाटी" के परिकल्पन की प्रेरणा स्वतः आचार्यश्री के शब्दों में दृष्टव्य है –"तेजो बिन्दु उपनिषद्" ५/५१ तथा–५/५२ की निम्न पंक्तियाँ –

रक्षको विष्णुरित्यादि ब्रह्मा सृष्टेस्सु कारणम्।
संहारे रुद्र इत्येवं सर्व–मिथ्येति निश्चिनु।

अर्थात् ब्रह्मा को सृष्टि का कर्त्ता, विष्णु को सृष्टि का संरक्षक और महेश को सृष्टि का विनाशक मानना मिथ्या है, इस मान्यता को छोड़ना ही आस्तिकता है। अस्तु।

ऐसे ही कुछ मूलभूत सिद्धान्तों के उद्घाटन हेतु इस कृति का सृजन हुआ है, जिसका साहित्यिक सानिध्य पाकर, रागातिरेक से भरकर, श्रृंगार-रस के जीवन में भी वैराग्य का उभार आता है, जिससे लौकिक अलंकार अलौकिक अलंकारों से अलंकृत हुए हैं, अलंकार अब अलं का अनुभव कर रहा है, जिसमें शब्द को अर्थ मिला है, और अर्थ को परमार्थ मिला, जिसमें नूतन शोध-प्रणाली आलोचन के मिष, लोचन दिये हैं, जिसने सृजन के पूर्व ही हिन्दी–जगत् को अपनी आभा से प्रभावित–भावित किया है, प्रत्यूष में प्राची की गोद में छुपे भानु–सम, जिसके अवलोकन से काव्य–कला–कुशल-कवि तक को स्वयं को अध्यात्म–काव्य–सृजन से सुदूर पायेंगे, जिसकी उपास्य–देवता शुद्ध–चेतना है। जिसके प्रति प्रसंग–पंक्ति से पुरुष को प्रेरणा

मिलती है – सुसुप्त चैतन्य-शक्ति को जागृत करने की, जिसने वर्ण–जाति–कुल आदि व्यवस्था–विधान को नकारा नहीं है, परन्तु जन्म के बाद आचरण के अनुरूप, उनमें उच्च–नीचता–रूप परिवर्तन को स्वीकारा है। इसी संकर–दोष से बचने के साथ–साथ वर्ण–लाभ को मानव–जीवन का औदार्य व साफल्य माना है। जिसने शुद्ध–सात्विक भावों से सम्बन्धित जीवन को धर्म कहा है, जिसका प्रयोजन सामाजिक, शैक्षणिक,राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्रों में प्रविष्ट हुई कुरीतियों को निर्मूल करना और युग को शुभ संस्कारों से संस्कारित कर, भोग से योग की ओर मोड़ देकर वीतराग श्रमण–संस्कृति को जीवित रखना है – और जिसका नाम हुआ है – "मूकमाटी।"

श्री पिसनहारी मढ़ियाजी (जबलपुर)म.प्र. और श्री नयनागिरिजी (छतरपुर)म.प्र. तथा बुन्देलखण्ड प्रान्त की अन्य साधना–स्थलियों, पुण्य–भूमियों से उपजी कृति मूकमाटी को मात्र लौकिक दृष्टि से देखना अपनी अल्पज्ञता को प्रमाणित करना है। "मूकमाटी" अलौकिकोन्मुख काव्य–कृति है, जिसे लौकिकता की रसात्मकता से रमणीय बनाया गया है।

आचार्यश्री ने इस कृति के माध्यम से श्रमण–सस्कृति के संपोषक जैन–दर्शन के आस्थावादी विचारों से विश्व के अन्य दर्शनो को सही दिशा–बोध कराया है। यथा विषय–कषायों का त्याग कर जितेन्द्रिय, जित कषाय और विजितमना हो, जिसने पूरी आस्था के साथ आत्म–साधना की है और अपने में छिपी हुई ईश्वरीय शक्ति का उद्घाटन कर, अविनश्वर सुख पा लिया है, वह पुनः संसार में अवतरित नहीं हो सकता है, जिस प्रकार दूध में से घी निकल जाने के बाद, घी पुनः दूध रूप में नहीं लौट सकता है।

श्रमण–संस्कृति के "उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य–मुक्तं सत्" जैसे शाश्वत–सिद्धान्त की प्रतिष्ठापना के निमित्त रचित मूकमाटी वस्तु की स्वभावभूत–सृजनशीलता एवं परिणामशीलता से वस्तु का त्रिकाल–जीवन सिद्ध करता है।

यह अकाट्य नियम है कि कार्य–कारण के अनुरूप हुआ करता है, जैसे बीज बोते हैं वैसे फल पाते हैं, विपरीत नहीं–जड़–चेतन के कार्य–कारण सम्बन्धी प्रतिस्थापना से।

"मूकमाटी" महाकाव्यालोचन निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है। यथा –

१. महत् उद्देश्य –

आलोच्य "मूकमाटी" महाकाव्य का महत् उद्देश्य आचार्यश्री के उपर्युक्त कथन से सुस्पष्ट है। वीतराग श्रमण–संस्कृति के संरक्षण, सम्वर्द्धन एवं प्रतिष्ठापन द्वारा युग को शुभ संस्कारों से संस्कारित कर, भोग से योग की ओर उन्मुख कर, मानव–जीवन के चतुर्वर्ग फल –(धर्म,अर्थ, काम और मोक्ष) मोक्ष–प्राप्ति की दिशा में अग्रसर कर, मानव–जीवन की सार्थकता सिद्ध करना मूकमाटी महाकाव्य का महान् लक्ष्य है। भक्त से भगवान्, नर से नारायण, आत्मा से परमात्मा बनने और इन्सान से शैतान या हैवान बनने से बचने का सुगम मार्ग परिलक्षित करना इस कृति का परम ध्येय है।

"मूकमाटी" के पथ का पथिक सन्त–कवि स्वतः विश्व–कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है। अनादिकाल से विषय–कषायजनित कर्मों से जकड़ा, धूल–धूसरित यह भगवान् आत्मा जब सच्ची श्रद्धा के साथ देव, शास्त्र और गुरु की उपासना में लीन, आत्म–साधना करता है तो निःसंदेह जन्म–जरा–मरण के बन्धनों से मुक्त, सत्, चित्आनन्द रूप परमात्मा बन जाता है। यह व्यापक जीवन–दृष्टि मूकमाटी–सृजन का मूल आधार है।

"नर से नारायण बनना", मानव–जीवन का परम लक्ष्य होना चाहिये। भौतिक एषणाओं की तृप्ति में निरन्तर लगा रहना, जीवन की दुर्गति करना है। आचार्यश्री ने श्रमण–संस्कृति के मूल को इन पंक्तियों में अभिव्यंजित किया है, जो महाकाव्य सृजन का महत् उद्देश्य भी है –

हमारी उपास्य देवता
अहिंसा है,

और
जहाँ गाँठ–ग्रन्थि है
वहाँ निश्चित ही
हिंसा छलती है।
ग्रन्थि हिंसा की सम्पादिका है
और
निर्ग्रन्थ दशा में ही अहिंसा पलती है।

* * * * * *

हम निर्ग्रन्थ पथ के पथिक हैं
इसी पंथ की हमारे यहाँ
चर्चा–अर्चा–प्रशंसा
सदा चलती रहती है।
यही जीवन, इसी भाँति
आगे–आगे भी चलता रहे
बस!
और कोई वाञ्छा नहीं। (पृष्ठ ६४–६५)

सन्त–कवि की लेखनी से निःसृत पंक्तियाँ मूकमाटी के महत् उद्देश्य पर, स्वतः प्रकाश डालती हैं – यथा–

मैं यथाकार बनना चाहता हूँ। व्यथाकार नहीं।
और
मैं तथाकार बनना चाहता हूँ। कथाकार नहीं।

* * *

कृति रहे, संस्कृति रहे
आगामी असीम काल तक
जागृत–जीवित–अजित।
सहज प्रकृति का वह/ श्रृंगार श्रीकार
मनहर आकार ले
जिससे आकृत होता है।
कर्ता न रहे, वह। विश्व के सम्मुख कभी भी
विषम विकृति का वह/ क्षार–दार संसार,
अहंकार का हुंकार ले/ जिसमें जागृत होता है।
और
हित स्व–पर का यह/ निश्चित निराकृत होता है। पृष्ठ २४५–२४६

आचार्यश्री के शब्दों में – "आतंकवाद का अन्त और –अनन्तवाद का श्री गणेश"–भी मूकमाटी का व्यापक उद्देश्य है। भारतीय संस्कृति का महत् लक्ष्य–असत् पर सत् की विजय, अंधकार पर प्रकाश की विजय और अज्ञान पर ज्ञान की विजय–होना है। आचार्यश्री ने इस महत् उद्देश्य की प्रतिस्थापना की है। मानव मन में विषय–भोग–कषायादि–जन्य मनोविकार आतंकवाद के प्रतीक हैं, जो मानव–मन को सत् से विमुख कर असत् की ओर प्रवृत्त करते हैं, किन्तु इन्द्रिय–निग्रह–संयम आदि जन्य सदाचरण और सद्विचारों से अभिभूत जीवन जन्म–जरा– मृत्यु को जीतकर अनन्त जीवन की शुरुआत करता है। यही मुक्ति है, यही मोक्ष है, यही अनन्तवाद है।

"मूकमाटी" किसी वर्ग, जाति, सम्प्रदाय, समाज, धर्म, संस्कृति को उजागर करने वाला महाकाव्य नहीं है, अपितु सम्पूर्ण मानव–जाति को उत्कर्ष के शिखर पर पहुँचने का मार्ग दिखाने

वाला महाकाव्य है, क्योंकि सन्त किसी जाति, धर्म या समाज के नहीं होते। वे तो सम्पूर्ण मानव–समाज के होते हैं। वे सदैव समता, शान्ति और सौम्य की साक्षात् मूर्ति होते हैं। ऐसे सन्त–कवि की वाणी से झंकृत काव्य प्राणि–मात्र के मंगल का ही काव्य होता है। भारतीय संस्कृति की उदात्त भावना–

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुखभाग् भवेत।।

ऐसा ही औदात्तपूर्ण भाव संत–कवि ने इन पंक्तियों में व्यक्त किया है –

यहाँ सबका सदा
जीवन बने मंगलमय
छा जावे सुख–छाँव
सब के सब टलें
अमंगल–भाव
सबकी जीवन लता
हरित–भरित विहँसित हो
गुण के फूल विकसित हों
नाशा की आशा मिटे
आमूल महक उठे। ...... बस। (पृष्ठ ४७८)

प्रस्तुत शब्द–चित्र ने मूकमाटी में निहित उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए भौतिकतावादी मानव की स्थिति को स्पष्ट किया है। "सत्यं–शिवं–सुन्दरम्" मानव–जीवन का परम लक्ष्य पाना है या भोगलिप्सा की अतृप्त दौड़ में विनाश के गर्त में गिरना है। चिन्तन और मनन करने के लिए विवश करता है आचार्यश्री का यह शब्द–शिल्पांकन –

इस युग के/ दो मानव
अपने आप को/ खोना चाहते हैं –
एक। भोग–राग को/ मद्य–पान को/ चुनता है,
और एक। योग–त्याग को/ आत्मध्यान को। धुनता है/
कुछ ही क्षणों में। दोनों होते/ विकल्पों से मुक्त।
फिर क्या कहना!
एक शव के समान/ निरा पड़ा है,
और एक/ शिव के समान/ खरा उतरा है। (पृष्ठ २८६)

यह "शिव" ही "मूकमाटी" का महान् उद्देश्य है, जो सम्पूर्ण मानव–जाति को संकेत करता है। कि "शव" और "शिव" का अर्थ–बोध समय रहते पहचान लो अन्यथा हाथ मलते रह जाना पड़ेगा। "जब जागे तभी सबेरा" की उक्ति से प्रेरणा लेकर "शिव" पथ का पथिक बन जा, जो आत्म–कल्याण, मानव–कल्याण और विश्व–शान्ति का प्रशस्त पथ है।

●

"सविस्तार कथा-वस्तु"

मूकमाटी की कथा-वस्तु लोक प्रख्यात है। माटी की महिमा कौन नहीं जानता ? यद्यपि माटी जैसी अकिंचन, पद-दलित, तुच्छ-वस्तु को कथा का आधार बनाया गया है, किन्तु माटी अपने प्रतीकात्मक अर्थ में पवित्र आत्मा है, जो युगों-युगों से भव-भ्रमित है और अपने उद्धार का मार्ग खोज रही है, किन्तु सम्यक् मार्ग के ज्ञान के अभाव में भव-भटकन ही उसकी नियति बन गई है। संसार का प्रत्येक प्राणी सुख-शान्ति की खोज में भटक रहा है किन्तु यह उसकी मृग-मरीचिका ही है। सच्चे सुख और शान्ति की खोज के लिए अहिंसा के मार्ग का पथिक बनना ही पड़ेगा और उस पथ का पथिक निर्ग्रन्थ-संत ही सच्चा मार्ग-दर्शक है। उसका अनुसरण किये बिना सच्चा सुख, शान्ति और मुक्ति कहाँ ?

संकोच-शीला, लाजवती, लावण्यवती सरितातट की माटी अपने उद्धार की पवित्र भावना से आन्दोलित हो, माँ-धरती से- इस पर्याय की इति और उन्नत जीवन का पथ और पाथेय पूछती है। आचार्यश्री स्वतः सन्त हैं, जो साधना के जीवन्त प्रतिरूप हैं – और जीवात्मा को पथ-प्रदर्शित करने वाले पाथेय हैं। ऐसे तपस्वी सन्त की साधनानुभूति और निर्मलवाणी से अनुगुंजित अभिव्यक्ति लोकमंगल और लोककल्याण की साधिका है।

सम्पूर्ण कथानक चार खण्डों में विभक्त हैं। प्रथम खण्ड "संकर नहीं-वर्ण लाभ" का प्रारम्भ प्राकृतिक परिवेश से होता है, यथा –

सीमातीत शून्य में/ नीलिमा बिछाई
और इधर नीचे/ निरी नीरवता छाई।
निशा का अवसान हो रहा है
ऊषा की अब शान हो रही है।

* * * * *

प्राची के अधरों पर/ मंद मधुरिम मुस्कान है।

* * * * *

लज्जा के घूंघट में/ डूबती-सी कुमुदिनी,

* * * * *

अधखुली कमलिनी। डूबते चाँद की।

* * * * *

मंद-मंद/ सुगंध पवन/ बह रहा है,
बहना ही जीवन है,
बहता-बहता/ कह रहा है। *(पृष्ठ १-३)*

महाकाव्योचित मनोरम प्राकृतिक परिदृश्यों की अनुपम-छटा के बीच पतिता, पातिता, पद-दलिता सरिता तट की माटी, धरती-माँ के समक्ष अपनी अव्यक्त पीड़ा को व्यक्त करती हुई, अपनी मूक वेदना के शमन का उपाय पूछती है –

"इस पर्याय की/ इति कब होगी ?
इस काया की/ च्युति कब होगी ?
और सुनो ! विलम्ब मत करो
पद दो, पथ दो/ पाथेय भी दो माँ !" *(पृ.५)*

माँ-बेटी का लम्बा-सम्भाषण अविरल सरित्-प्रवाह की भाँति एक नया मोड़ लेकर, दार्शनिक चिन्तन को मुखरित करता है। प्रत्येक तथ्य अपने स्वाभाविक रूप में प्रकट होता है, आरोपित प्रतीत नहीं होता है। धृति-धारिणी-धरती कहती है –

सत्ता शाश्वत होती है, बेटा !
प्रतिसत्ता में होती है,
अनगिन सम्भावनायें,
उत्थान–पतन की

* * * * *

सत्ता शाश्वत होती है।
सत्ता भास्वत होती है, बेटा !

असत्य की सही पहचान ही
सत्य का अवधान है, बेटा ! (पृष्ठ ७–९)

माँ धरती, बेटी माटी को अनेक जीवन–तथ्यों और तत्वों को उद्‌घाटित करती हुई, माटी से कहती है –

प्रभात में कुम्भकार आयेगा
पतित से पावन बनने,
समर्पण–भाव–समेत
उसके सुखद चरणों में
प्रणिपात करना है तुम्हें,
अपनी यात्रा का
सूत्र–पात करना है, तुम्हें ! (पृष्ठ १६–१७)

उसी के तत्त्वावधान में तुम्हारा अग्रिम जीवन, स्वर्णिम बन दमकेगा। परिश्रम नहीं करना है तुम्हें, परिश्रम वह करेगा, उसके उपाश्रम में, उसकी सेवा शिल्प–कला पर, अविचल चितवन, दृष्टिपात करना है तुम्हें।

मूकमाटी महाकाव्य के लौकिक काव्यास्वाद के लिए जैन–दर्शन के अनेकान्त–सिद्धान्त और स्याद्वाद–शैली की शरण लेनी होगी। मौन माटी इस महाकाव्य की नायिका है और मंगल–घट का शिल्पी कुम्भकार नायक है, किन्तु वह शिल्पी आध्यात्मिक सन्त–गुरु का प्रतीक है। स्वयं गुरु के उद्धारकर्त्ता–गुरु जिनदेव हैं। मूकमाटी की मंगलकामना है कि नगर सेठ की श्रद्धा के आधार गुरुदेव के पाद–प्रक्षालन हेतु, मंगल–घट के रूप में उद्‌घाटित होऊँ। इस भावना को साकार करने के लिए युगों–युगों से प्रतीक्षा है, शिल्पकार की।

(क) प्रथम खण्ड में माटी के कंकड़–कणों से मिश्रित–मौलिक, प्राथमिक दशा के परिशोधन की प्रक्रिया व्यक्त की गयी है। कुम्भकार की परिकल्पना में मंगलघट अवतरित हुआ है। वह माटी को मंगल–घट–मूर्ति का रूप साकार करना चाहता है। अभी माटी वर्णसंकर है। वह उसे खोद, कूट–छान कर, कंकड–रहित कर, मृदु–माटी का रूप देकर वर्ण लाभ देना चाहता है। कंकड़ उसकी प्रकृति के विपरीत हैं, बेमेल है। वह उसे उसकी शुद्ध दशा में लाना चाहता है। तभी तो वह घट–निर्माण के योग्य बन सकेगी। शिल्पी, शिल्पकला में प्रवीण गौरवशाली है। यथा –

एक चेहरा/ जो भरा है
अनन्य भावों से,
अदम्य चावों से,
जिसका भाल वह/ बाल नहीं है,
वृद्ध है, विशाल है/ भाग्य का भण्डार।

* * * * *

वह एक कुशल शिल्पी है,
उसका शिल्प
कण–कण के रूप में/ बिखरी माटी को

नाना रूप प्रदान करता है। *(पृष्ठ २६-२७)*

ऐसा अप्रतिम शिल्पी माटी को वर्ण-संकर से वर्ण-लाभ देने का उपक्रम करता है। यथा-

ओंकार को नमन किया।

* * * * *

अहंकार का वमन किया है

* * * * *

क्रूर-कठोर कुदाली से
खोदी जा रही है माटी।
बोरी में भरी जा रही है,
बोरी के दोनों छोर बन्द हैं। *(पृष्ठ २८-३०)*

माटी और शिल्पी के बीच मनोरम नाटकीय संवाद। मूकमाटी अव्यक्त भावों को शब्दों का अवलम्बन लेकर व्यक्त करती हुई, अपना इतिहास बताती है। तब सहज भाव से शिल्पी कहता है-

वास्तविक जीवन यही है
सात्विक जीवन यही है।

* * * * *

अति के बिना
इति से साक्षात्कार सम्भव नहीं,
और
इति के बिना, अथ का दर्शन असम्भव!

* * * * *

पीड़ा की अति ही / और पीड़ा की इति है,
और
पीड़ा की इति ही/ सुख का अथ है। *(पृष्ठ ५-३३)*

जन्म जन्मान्तर से बोझा ढोने वाले गदहे की पीड़ा से माटी करुणार्द्र हो, पश्चात्ताप की आग में जलकर सोचती है -कि इस वेदना का "निमित्त कारण - मैं ही हूं।" पर-दुःख-कातरता अपने दुःखों को स्मरण कराती है। यथा -

पर की दया करने से
स्व की याद आती है
और स्व की याद ही
स्व-दया है
विलोम रूप से भी
यही अर्थ निकलता है,
या---द-द---या।

* * * * *

वासना का विलास/ मोह है।
दया का विकास/ मोक्ष है।। *(पृ. ३८)*

"गदहा" माटी ढोते-ढोते शिल्पी (गुरु) से निवेदन करता है कि हे प्रभो ! मेरा नाम भी सार्थक कीजिये -

"गद" का अर्थ है रोग
"हा" का अर्थ है हारक
मैं सबके रोगों का हन्ता बनूँ।
बस और कोई बाधा नहीं। *(पृ. ४०)*

शिल्पी की कर्मशाला में माटी उतारी जाती है, जहाँ –
जीवन का "निर्वाह" नहीं, "निर्माण" होता है।

* * * * *

अधोमुखी जीवन/ ऊर्ध्वमुखी हो/ उन्नत बनता है।

* * * * *

सदियों से उलझी समस्यायें/ सहज सुलझती जाती हैं।

* * * * *

असि और मसि को भी/ कृषि और ऋषि को भी
कुछ ऐसे सूत्र मिलते हैं, निस्वार्थी भी वे,
आर्ष पा जाते हैं/ यहाँ पर। *(पृ. ४३)*

शिल्पी अपने मृदु हाथों से माटी का चालन कर, संशोधन करता है कि अचानक माँ माटी से अपना वियोगीकरण देखकर, कंकड़ संयत स्वर में शिल्पी से निवेदन करता है कि माटी और हममें समता और सादृश्यता है। हमारी जाति एक है, हम एक वर्ण हैं, फिर भी हमें माटी से अलग क्यों किया जा रहा है ? शिल्पी अपने मीठे स्वर में कहता है कि माटी के संकर–दोष को दूर करने के लिये "कंकर–कोष" को अलग करना ही होगा और माटी को अपने गुण–धर्म–रूप स्वरूप में लाना ही होगा, अन्यथा– यथा –

नीर की जाति न्यारी है
क्षीर की जाति न्यारी
क्षीर में नीर मिलाते ही
नीर–क्षीर बन जाता है।
गाय का क्षीर भी धवल है।
आक का क्षीर भी धवल है।
दोनों ऊपर से विमल हैं
परन्तु
परस्पर मिलाते ही,
विकार उत्पन्न होता है –
क्षीर फट जाता है/ पीर बन जाता है वह ।
नीर का क्षीर बनना ही वर्ण लाभ है/ वरदान है,
और, क्षीर का फट जाना ही/ वर्ण–संकट है/ अभिशाप है। (पृष्ठ ४८–४९)

इसलिए हे कंकड़ो। माटी से तुम्हारा मिलन अवश्य हुआ, किन्तु उसने तुम्हें आत्मसात् नहीं किया। यदि तुम्हें पीसकर चूर्ण भी बनाया जाये तो भी तुम रेतिल ही रहोगे और तुममें जल सोखने (धारण) की क्षमता नहीं है। तुम्हें दूसरे का दुःख–दर्द देखकर पसीना नहीं आता अर्थात् तुम पाषाण–हृदय हो। अतएव तुम्हारा त्याज्य अनिवार्य है। माँ माटी को कंकड़ों पर दया आई, और वह कुछ देशना देकर, उनके कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती हुई कहती है –

संयम की राह चलो ।
राही बनना ही तो हीरा बनना है,
स्वयं राही शब्द ही/ विलोम रूप से कह रहा है –
रा........ ही ही...... रा।
तन और मन को/ तप की आग में/ तपा–तपा कर,
जला–जला कर/ राख करना होगा।
यतन घोर करना होगा/ तभी कहीं चेतन आत्मा,
खरा उतरेगा।

(पृष्ठ ५६–५७)

खरा शब्द भी स्वयं विलोम रूप से कह रहा है –
राख बने बिना,
खरा–दर्शन कहाँ ?
रा. .... ख ख.... रा.... ।

कुम्भकार आज माटी को फुलाना चाहता है, इसलिए वह रस्सी–बाल्टी लेकर, आँगन में स्थित कूप से जल लाने का उपक्रम करता है किन्तु रस्सी उलझी हुई है। उसे सुलझाने का प्रयास किया जाता है। रस्सी में पक्की गाँठ लग जाती है। उसे खोलने में दाँत और रसना तक का उपयोग करना पड़ता है। इस कारण रसना और रस्सी में पर्याप्त संलाप होता है। रसना रस्सी की जिज्ञासा पूरी करती हुई कहती है –

मेरे स्वामी संयमी हैं
हिंसा से भयभीत
और
अहिंसा ही जीवन है उनका।

* * * * *

हमारी उपास्य–देवता
अहिंसा है,
और
जहाँ गाँठ–ग्रन्थि है,
वहाँ निश्चित ही
हिंसा छलती है।

* * * * *

ग्रन्थि हिंसा की सम्पादिता है। (पृष्ठ ६४)

रस्सी की गाँठ खुलने पर जैसे ही कुम्भकार ने बाल्टी–रस्सी कुंये में डाली कि कुम्भकार की प्रतिच्छाया कूप की स्वच्छ जल–राशि में तैरती मछली पर पड़ी कि उसकी मानस–स्थिति ऊर्द्धमुखी हो उठी और वह सोचती है कि ऊपर के कुम्भकार की काया तक मेरी काया कैसे पहुँचेगी। कुंये में पड़ी बाल्टी में आकर मछली, कुंये से बाहर आने की अपनी यात्रा को इस पवित्र भावना में व्यक्त करती है –

इस शुभ–यात्रा का/ एक ही प्रयोजन है,
साम्य–समता ही/ मेरा भोजन हो,
सदोदिता, सदोल्लसा/ मेरी भावना हो,
दावन–तन धर/ मानव–मन पर,
हिंसा का प्रभाव ना हो,
दिवि में, भू में/ भू–गर्भों में,
जिया–धर्म की/ दया–धर्म की। प्रभावना हो। (पृष्ठ ७७–७८)

बाल्टी में, पानी के साथ मछली कुंये से बाहर आ जाती है। जब कुम्भकार सावधानीपूर्वक पानी छानता है, तो मछली बाल्टी से उछलकर, माटी के पावन चरणों में गिर पड़ती है और निवेदन करती है कि माँ–माटी ! मुझे कुछ ज्ञान दो। माटी कहती है –

सुनो बेटा। यही।/ कलियुग की सही पहचान है।
जिसे/ खरा भी अखरा है सदा,
और
सत्–युग तू उसे मान,
बुरा भी/ बुरा, सा लगता है सदा। (पृष्ठ ८२–८३)

माँ–माटी अनेक प्रकार से सम्बोधित करती हुई पुनः कहती है –

अपने जीवन–काल में,
छली–मछलियों से
छली नहीं बनना।
विषयों की लहरों में
भूलकर भी
मत चली बनना।
मासूम मछली रहना,
यही समाधि की जननी है। (पृष्ठ ८७–८८)

माटी कुम्भकार को संकेत करती है कि इस भव्य आत्मा मछली को कूप के जल में पहुँचा दो। अन्ततः मछली के कूप में पहुँचने पर पुनः "दया धर्म का मूल है" (दया विसुद्धो धम्मो) की ध्वनि गूँजती है।

* * * * *

"शब्द सो बोध नहीं · बोध सो शोध नहीं"

(ख) कथानक का द्वितीय खण्ड शिशिर की शीतल चुभन से प्रारम्भ होता है। शरद–ऋतु में, कुमकुम के समान कोमल माटी में कुम्भकार मात्रानुकूल जल मिलाता है। "शीत की शीतल छुवन" में सस्ती सूती चादर वाले शिल्पी को माटी कम्बल के विकल्प का संकेत करती है, किन्तु शिल्पी कहता है –

कम बल वाले ही / कम्बल वाले होते हैं।
और/ काम के दास होते हैं।
हम बल वाले हैं/ राम के दास होते हैं
और राम के पास सोते हैं। (पृष्ठ ९२)
पुरुष का प्रकृति में रमना ही / मोक्ष है, सार है।
और
अन्यत्र रमना ही। भ्रमना है/ मोह है, संसार है। (पृष्ठ ९३)

माटी फूलकर चिकनी हो गई है। वह अपने मौलिक रूप में आ गई है। वह शिल्पी के सयोग से घट का रूप संधारण कर, अग्नि के संयोग से जल–धारण करने की क्षमता कब प्राप्त कर सकेगी – ऐसा विचार बार–बार उसके मन में उठ रहा है। माटी खोदते समय कुदाली की चोट से एक काँटे के शरीर का हाल बेहाल हो गया है। वह माटी के अन्दर रहकर शिल्पी से बदले की भावना से जल रहा है। माटी काँटे के प्रतिशोध के भाव को परिवर्तित करने के लिए समझाती हुई कहती है –

बदले का भाव वह दल–दल है/ कि जिसमें –
बड़े–बड़े बैल ही क्या/ बलशाली गज–दल तक,
बुरी तरह फँस जाते हैं।
बदले का भाव वह अनल है,
जो/ जलाता है, तन को भी, चेतन को भी
भव–भव तक। (पृष्ठ ९७–९८)

काँटा अपनी प्रासंगिकता का विशद वर्णन करता हुआ, पुष्पों और काँटों के सह–अस्तित्व को निरूपित करता है। वह कहता है – शिल्पी ने हमें क्षत–विक्षत कर कष्ट पहुँचाया है। कम–से–कम शिल्पी को मुझसे क्षमा तो माँगना चाहिये। तत्क्षण, "खम्मामि, खमंतु मे" – की वाणी शिल्पी के मुख से प्रस्फुटित होती है। काँटे का क्रोधभाव शमन होता है और वह सविनय शिल्पी से जीवन की सफलता के लिए मार्ग–दर्शन की प्रार्थना करता है। शिल्पी काँटे की जिज्ञासा का समाधान करता हुआ कहता है –

अपने को छोड़कर
पर–पदार्थ से प्रभावित होना ही
मोह का परिणाम है।
और
सबको छोड़कर
अपने आप में भावित होना ही,
मोक्ष का धाम है। (पृष्ठ १०९–११०)

शिल्पी माटी को सृजन योग्य बनाने के लिए पाँव से रौंदता है कि अचानक उसका एक पाँव शून्य हो जाता है – और दूसरा पाँव यों कहता है –

पदाभिलाषी बनकर
पर, पर पद–पात न करूँ।
उत्पात न करूँ,
कभी भी किसी जीवन को,
पद–दलित नहीं करूँ। (पृष्ठ ११५)

माँ–माटी को अपने पदों से कुचलना शिल्पी को यथेष्ट नहीं है। उसके अंग–प्रत्यंग, उत्तमाग पैरों के अनुचर बने हुए हैं। माटी और शिल्पी के बीच मौन साकार है। शिल्पी अपना कर्तव्य समझ माटी की रौंदन–क्रिया में संलग्न है और उसे लौंदा का आकार देकर, अपने घूमते चक्र पर रखता है। माटी का माथा चक्कर खाने लगता है। शिल्पी माटी को सम्बोधित करता हुआ कहता है –

संसार का चक्र वह है जो ,
राग–द्वेष आदि वैभाविक,
अध्यवसान का कारण है,
चक्री का चक्र वह है जो,
भौतिक जीवन के/ अवसान का कारण है
परन्तु
कुलाल – चक्र यह,
वह सान है,
जिसपर जीवन चढ़कर,
अनुपम पहलुओं से निखर आता है। (पृष्ठ १६२–१६३)

शिल्पी पूर्ण मनोयोग से कुलाल–चक्र को घुमाता हुआ माटी के लौंदे को घट का आकार देता है और उसे बड़ी सावधानी से, चक्र से उतार कर धरती पर रखता है। दो–तीन दिन के पश्चात् शिल्पी घड़े का गीलापन कम होने पर, उसे घोंटने (चिकना करना अथवा उभरे दोषों को नष्ट करना) की क्रिया करता है। इस क्रिया द्वारा शिल्पी घडे की कमी को दूर करता है , यथा –

विकास के क्रम तब उठते हैं,
जब मति साथ देती है,
जो मान से विमुख होती है,
और
विनाश के क्रम तब जुटते हैं,
जब रति साथ देती है,
जो मान से प्रमुख होती है।
उत्थान–पतन का यही आमुख है। (पृष्ठ १६४)

शिल्पी घट को वांछित आकार देकर, उस पर कुछ तत्वोद्घाटक संख्याओं का अंकन,

चित्रों का चित्रण और काव्य-पंक्तियाँ अंकित करता है। शिल्पी सर्वप्रथम ९९ और ९ की संख्यायें अंकित करता है, जो निम्नांकित संकेतित करती हैं–

९९ वह विघन-माया छलना है,
क्षय स्वभाव वाली है
और
अनात्म-तत्व की उद्योतिनी है।
और ९, की संख्या यह
सघन छाया है, जीवन जिसमें पलता है,
अक्षय स्वभाव वाली है,
अजर-अमर-अविनाशी,
आत्म-तत्व की उद्बोधिनी है। *(पृष्ठ १६७)*

तत्पश्चात् शिल्पी घट पर ६३ की संख्या अंकित करता है, जो पुराण-पुरुषों (श्लाका पुरुषों) का स्मरण कराती है। ६ और ३ एक दूसरे के सम्मुख झाँकते हुए कहते हैं –

एक दूसरे के सुख-दुख में,
परस्पर भाग लेना,
सज्जनता की पहचान है,
और
औरों के सुख को देख, जलना
औरों के दुःख को देख, खिलना,
दुर्जनता का सही लक्षण है। *(पृष्ठ १६८)*

कुम्भ पर चित्रित सिंह और श्वान के चित्र स्वतः मुखरित होते हैं –

पीछे से, कभी किसी पर
धावा नहीं बोलता सिंह,
गरज के बिना गरजता भी नहीं,
और / बिना गरजे/ किसी पर बरसता भी नहीं –
यानी मायाचार से दूर रहता है सिंह।
परन्तु, श्वान सदा।
पीठ-पीछे से जा काटता है,
बिना प्रयोजन जब कभी भौंकता भी है।
जीवन-सामग्री हेतु,
दीनता की उपासना/ कभी नहीं करता सिंह।
जब कि,
स्वामी के पीछे-पीछे पूँछ हिलाता,
श्वान फिरता है, एक टुकड़े के लिए।
श्वान को पत्थर मारने से,
वह पत्थर को ही पकड़कर काटता है/ मारक को नहीं।
सिंह विवेक से काम लेता है,
सही कारण की ओर ही
सदा दृष्टि जाती है सिंह की। *(पृष्ठ १६९-७०)*

कुम्भ पर कछुआ और खरगोश के चित्र अंकित हैं, जो साधक को साधना की विधि का संकेत देते हैं। मंद गति से भी लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है, किन्तु प्रमादवश तीव्र गति भी असफलता का कारण हो सकती है। (पृ. १७२) घट पर "ही" और "भी" बीजाक्षर अंकित हैं, जो एकान्तवाद और अनेकान्तात्मक स्याद्वाद के प्रतीक हैं –

'ही' देखता है हीन दृष्टि से पर को
'भी' देखता है समीचीन दृष्टि से सबको,
'ही' वस्तु की शक्ल को ही पकड़ता है,
'भी' वस्तु के भीतरी–भाग को भी छूता है।
'ही' पश्चिमी सभ्यता है,
भी है भारतीय संस्कृति, भाग्य विधाता

* * * * *

'भी' के आस–पास/ बढ़ती–सी भीड़ लगती अवश्य
किन्तु भीड़ नहीं, 'भी' लोकतन्त्र की रीढ़ है। (पृष्ठ १७३)

'कर पर कर दो' – अंकित पंक्ति हमारे भविष्य की ओर संकेत करती हुई कहती है –

कहाँ बैठे हो तुम श्वास खोते,
सही–सही उद्यम करो,
पाप–पाखण्ड से परे हो,
कर पर कर दो।
बच जाओगे।
अन्यथा।
मेल में अन्ध हो
जेल में बन्द हो।
पच पाओगे........? (पृष्ठ १७४)

'मर हम मरहम बनें' (पृ. १७४) 'मैं दो गला' (पृ. १७५) जैसी कुम्भ पर अंकित पंक्तियाँ अनेक संकेत करती हुई जीवन – लक्ष्य का स्मरण कराती हैं –

भोग पड़े हैं यहीं/ भोगी चला गया,
योग पड़े हैं यहीं/ योगी चला गया,
कौन किसके लिए/ धन जीवन के लिए,
या जीवन धन के लिए ?
मूल्य किसका/ तन का या वेतन का,
जड़ का या चेतन का ? (पृष्ठ १८०)

शिल्पी कुम्भ की नमी को सुखाने के लिए उसे धूप में रख देता है। बसंत–ऋतु का अन्त हो रहा है। कृतिकार ने वसंत का विशद् वर्णन कर, उसके दाह–संस्कार का वर्णन करते हुए, अस्थियों का विश्व की मूढ़ता पर हँसना, उनका युगों–युगों से दफनाया जाना और आगामी जीवन का बीजारोपण आदि की अभिव्यंजना कर, मानव–जीवन की ओर संकेत किया है –

जिसने मरण को पाया है।
उसे जनन को पाना है
और
जिसने जनन को पाया है। उसे मरण को पाना है। यह अकाट्य नियम है।
(पृष्ठ १८१)

'रामचरितमानस' कार गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी ऐसा ही भाव निम्नांकित पंक्ति में व्यक्त किया है –

'धरा का प्रमाण यही तुलसी, जो झरा सो बरा, बरा सो बुताना'।

'बसंत की अस्थियाँ जीवन–सत्य का समाधान संतों की इस व्यावहारिक भाषा में पातीं हैं–

आना, जाना लगा हुआ है,
आना यानी जनन – उत्पाद है,

जाना यानी मरण – व्यय है,
लगा हुआ यानी स्थिर – ध्रौव्य है,
और/
है यानी चिर – सत्,
सही सत्य है, यही तथ्य .... । (पृष्ठ १८५)

* * * * *

अपना स्वामी आप है,
अपना कामी आप है,
फिर कौन किसका कब,
भरण कर सकता है ? (पृष्ठ १८५)

द्वितीय खण्ड में सन्त कवि ने काव्य को अपनी काव्य–प्रतिभा से आवेष्ठित कर साहित्य–बोध को अनेक आयामों में अंकित किया है – नव–रसों की विवेचना, संगीत की अन्तरंग प्रकृति का प्रतिपादन, बड़े कौशल एवं सहज रूप में हुआ है। श्रृंगार–रस की नितान्त मौलिक व्याख्या की गई है। ऋतु–वर्णन के काव्य–सौष्ठव दृष्टव्य है। पग–पग पर अनायास ही तत्त्वदर्शन दृष्टिगत होता है। **आशय यह है कि उच्चारण मात्र शब्द है, उसका अर्थ समझना बोध है, और बोध की अनुभूति को आचरित करना शोध है।**

* * * * *

(ग) कथानक के तृतीय खण्ड "पुण्य का पालनः पाप प्रक्षालन" का प्रारम्भ विश्वप्रसिद्ध घटना 'महा जल प्लावन' के संकेत से होता है। जल ने वसुधा के वैभव को अपने साथ बहा–बहा कर अपना रत्नाकर नाम सार्थक किया है। अपने और दूसरे को सताकर, जलधि ने अपनी जड़–बुद्धि का परिचय दिया है। पर; धरती ने अपने साथ दुर्व्यवहार होने पर भी प्रतिकार न करने का संकल्प लेकर, अपनी असीम सहन–शक्ति और क्षमाशीलता का परिचय दिया है, क्योंकि 'सर्वंसहा होना ही, सर्वस्व को पाना है जीवन में' (पृष्ठ १९०) की उक्ति सार्थक करना है उसे। पृथ्वी के साथ, जल का यह अन्याय सूर्यनारायण से देखा नहीं गया, इसलिए उसने अपनी प्रचण्ड ऊष्मा से जल को जलाया, किन्तु जला हुआ जल, वाष्प के रूप में ढलकर, बादल बन, बार–बार बरस कर, जलधि के दोषों को छिपाता रहता है, फिर भी, सूर्य–देव इस न्यायपथ से विचलित नहीं होते, किन्तु चन्द्रमा विचलित हो जाता है। वसुधा की सारी सुधा सागर में एकत्र होती है और उसका सेवन सुधाकर करता है। इसीलिए चन्द्रमा को कलंकित होना पड़ा और इसलिए वह रात्रि में चोर की तरह उदित होता है, जबकि सूर्य दिवस में धरती के निकट ही प्रवास करता है। यह सत्य है कि –

अर्थ की आँखें/ परमार्थ को देख नही सकतीं
अर्थ की लिप्सा ने बड़ों–बडो को/ निर्लज्ज बनाया है। (पृष्ठ १९२)

यद्यपि जल ही मुक्ता है और सीप धरती का ही अंश है, इसलिए –

जल को जड़त्व से मुक्त कर,
मुक्ता–फल बनाना,
पतन के गर्त से निकालकर,
उत्तुङ्ग–उत्थान पर धरना,
धृति – धारिणी धरा का ध्येय है।
यही दया धर्म है,
यही जिया कर्म है। (पृष्ठ १९३)

जल की जड़ता से परिचित धरती अपनी उदारता नहीं भूलती और अपने ही अंश बाँसों से कहती है –

'वंश की शोभा तभी है, जल को मुक्ता बनाते रहोगे, युगों–युगों तक'।
(पृष्ठ १९५)

धरती की आज्ञा पाकर बाँस भी जलदों को अपनी संगति से –
वंशमुक्ता में बदलता रहता है, तभी तो –
वंशीधर भी मुक्त कण्ठ से
वंशी की प्रशंसा करते हैं,
मुक्ता पहनते कण्ठ में।
और
अपने ललित–लाल अधरों से,
लाड़–प्यार देते हैं – वंशी को। (पृष्ठ १९५)

इसी प्रकार वंश–मुक्ता, सीप–मुक्ता, नाग–मुक्ता, सूकर–मुक्ता, मच्छ–मुक्ता, गज–मुक्ता और मेघ–मुक्ता बनाने में धरती का ही हाथ है। धरती की यह महान् विशेषता चन्द्रमा से देखी नहीं गई, इसलिए उसने जल–तत्त्व को निर्देशित किया कि अतिवृष्टि कर, धरती पर दल–दल बनाकर, उसकी एकता को खण्डित कर दो, क्योंकि –

दल–बहुलता शान्ति की हननी है, ना।
जितने विचार, उतने प्रचार,
उतनी चाल–ढाल,
हाला–धुली जल–ता
क्लान्ति की जननी है, ना।
तभी तो
अतिवृष्टि का अना–वृष्टि का।
और
अकाल–वर्षा का समर्थन हो रहा है, यहाँ पर। (पृष्ठ १९७)

कुम्भकार कारणवश तीन–चार दिनों के लिए प्रवास पर है, किन्तु उसका मन बरवश बार–बार आवास पर लौट आता है, क्योकि उसकी अप्रतिम कृति सूखने हेतु आँगन में रखी है। इसी बीच सागर अपनी कूटनीति से तीन बदलियों को भेजता है। तीनों बदलियाँ उमड़ती–घुमडती आकाश में उमड़ीं और प्रभावित करने लगती हैं। प्रभाकर ने प्रासंगिक प्रवचन द्वारा बदलियों को उद्बोधित किया कि अभी तक सुना नहीं है कि नारी–जाति द्वारा पृथ्वी पर कभी प्रलय हुआ हो, क्या तुम अपनी संस्कृति को विकृत करना चाहती हो –

क्या सदय–हृदय भी आज, प्रलय का प्यासा बन गया ?
क्या तन–संरक्षण–हेतु, धर्म ही बेचा जा रहा है ?
क्या धन संवर्धन–हेतु, शर्म ही बेची जा रही है ? (पृष्ठ २०१)

वह कहता है, स्त्री–समाज की अनेक विशेषताएँ हैं –

अपने हो या पराये
भूखे–प्यासे बच्चों को देख,
माँ के हृदय में दूध रुक नहीं सकता।
बाहर आता ही है उमड़कर
इसी अवसर की प्रतीक्षा रहती है, उस दूध को। (पृष्ठ २०१)

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी निम्नांकित पंक्तियों में यही भाव व्यक्त किया –

अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी।।
आँचल में है दूध, और आँखों में पानी।।

सन्त–कवि ने नारी–समाज के प्रति आदर और आस्था के भाव प्रकट किये हैं। उनके शान्त–संयत रूप की, शालीनता की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। नारी, सुता, दुहिता, कुमारी, स्त्री, महिला, अबला और अंगना शब्दों की नवीन परिकल्पना से शब्द–साधना के आन्तरिक

अर्थ-सौन्दर्य की सृष्टि हुई है। पथ की पहचान में नारी समाज ने प्रतिष्ठा पाई है। कृतिकार के शब्दों में –

इनकी आँखें हैं करुणा की कारिका,
शत्रुता छू नहीं सकती इन्हें,
मिलन-सारी मित्रता,
मुफ्त मिलती रहती इनसे,
यही कारण है कि
इनका सार्थक नाम है 'नारी'।
यानी 'न अरि' नारी
अथवा
ये आरी नहीं हैं, सो नारी .... । (पृष्ठ २०२)

कविवर जयशंकरप्रसाद ने नारी के प्रति अपना भाव इन पंक्तियों में व्यक्त किया है –

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत-पग-नभ तल में।
पीयूष स्रोत-सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।।

प्रभाकर का मर्म-स्पर्शी उद्बोधन तीनों बदलियों के हृदय को छू गया और वे आत्म-ग्लानि से भरकर-कह उठती हैं –

भूल क्षम्य हो स्वामिन्।
सेविका सेवा चाहती है,
वह दृश्य-छवि,
दृष्ट कब हो, इन आँखों को ?
धूल शम्य हो स्वामिन्। (पृष्ठ २०८)

आत्म-ग्लानि के कारण बदलियों की आँखों में अश्रुकण झलकने लगते हैं। यह घटना धरती की आँखों ने देखी और उन्हें सहलाने उसके अनगिन कण रूपी कर बढ़ गये। अश्रु-जल को मुक्ति मिली मेघ-मुक्ता के रूप में। कुम्भकार के प्रांगण में मोतियों की वर्षा होती है। यह समाचार राजा के पास पहुँचता है। राजा की मण्डली आकर, मोतियों को बोरियों में भरने लगती है कि आकाश से गर्जना होती है – अनर्थ .... अनर्थ .... अनर्थ ..... पाप ..... पाप ... पाप।

बाहुबल मिला है तुम्हें, करो पुरुषार्थ सही,
पुरुष की पहचान करो सही,
परिश्रम के बिना तुम,
नवनीत का गोला निगलो भले ही,
कभी पचेगा नहीं वह
प्रत्युत जीवन को खतरा है। (पृष्ठ २११-११२)

राजा को अनुभूत हुआ कि जैसे उसे मन्त्र-शक्ति से कीलित कर दिया गया हो। उसी क्षण कुम्भकार का आगमन होता है। उसके मस्तक पर विस्मय, विषाद और विरति की रेखायें उभरती हैं। यह 'ओंकार मंत्र' का उच्चारण कर, मूर्च्छित जनों पर, मंत्रित-जल का छिड़काव करता है, जिससे सभी की मूर्छा दूर हो जाती है। अन्ततः कुम्भकार मुक्ता-राशि राजा को समर्पित कर देता है, क्योंकि वास्तव में उस पर राजा का ही अधिकार है। राजा अपनी मण्डली सहित 'सत्य धर्म की जय हो, सत्य धर्म की जय हो' – के जयनाद से सारे आकाश को गुंजित कर देता है।

इसी प्रसंग में अपक्व कुम्भ (कच्चा घड़ा) राजा को नाना प्रकार से सम्बोधित करता है, जिससे राजा की भौंहें चढ़ जाती हैं। कुम्भकार स्थिति को समझकर, सम्हालते हुए, कुम्भ को

शालीनतापूर्वक हित–मित–वचन बोलने का उपदेश देता है, जिससे राजा का क्रोध शमन हो जाता है और वह मुक्ता राशि से अपने कोष को समृद्ध करता है।

धरती की कीर्ति का उत्कर्ष सागर से देखा नहीं गया। कुम्भ को गलाकर, मिट्टी में मिलाकर बहाने हेतु प्रेषित बदली ने जब मुक्ता की वृष्टि की तो धरती के यश में – श्रीवृद्धि हुई। इससे सागर के तेवर चढ़ गये और उसकी गम्भीरता भीरुता में बदल गई। कषायों से कलुषित मन वाला सागर अपने भाव इन शब्दों में व्यक्त करता है –

स्व स्त्री हो या पर स्त्री
स्त्री जाति का स्वभाव है कि
किसी पक्ष से चिपकी नहीं रहती वह।
अन्यथा, मातृभूमि, मातृ–पक्ष को।
त्याग–पत्र देना खेल है क्या ?
और वह भी,
बिना संक्लेश, बिना आयास !
यह/
पुरुष–समाज के लिए
टेढ़ी खीर ही नहीं, त्रिकाल असंभव कार्य है।
इसीलिए भूलकर भी
कुल परम्परा, संस्कृति का सूत्रधार,
स्त्री को नहीं बनाना चाहिये।
और गोपनीय कार्य के विषय में
विचार–विमर्श–भूमिका,
नहीं बताना चाहिये। (पृष्ठ २२४)

धरती के प्रति सागर का यह वैर–वैमनस्क भाव और गर्वीली दृष्टि देखकर प्रभाकर को सहन नहीं हुआ। सागर ने बडवानल का भयानक रूप धारण कर कहा –

आवश्यक अवसर पर,
सज्जन साधु पुरुषों को भी,
आवेश – आवेग का आश्रय लेकर ही,
कार्य करना पड़ता है।
अन्यथा,
सज्जनता दूषित होती है,
दुर्जनता पूजित होती है।
जो शिष्टों की दृष्टि में
इष्ट कब रही ? (पृष्ठ २२५)

'कथनी और करनी' में बड़ा अन्तर होता है – का व्यंग्य करता हुआ सागर ठहाका मारकर कहता है –

ऊपर से सूरज जल रहा है,
नीचे से तुम उबल रहे हो,
और
बीच में रहकर भी यह सागर
कब जला, कब उबला ?
इसका शीतल – शील यह कब बदला ? (पृष्ठ २२६)

कूटनीति से कूट–कूट कर भरा सागर पुनः पृथ्वी पर पुरुष रूप में तीन बादलों को भेजता है –
शुभ कार्यों में विघ्न डालना ही/ इसका प्रमुख कार्य है।

इनका जघन परिणाम है
जघन ही काम
और
घन नाम। (पृष्ठ २२७)

* * * * *

चाण्डाल सम प्रचण्ड शील वाले हैं
घमण्ड के अखण्ड पिण्ड बने हैं,
इनका हृदय अदय का निलय बना है,
रह-रहकर कलह
करते ही रहते हैं ये,
बिना कलह भोजन पचता ही नहीं इन्हें। (पृष्ठ २२८)

* * * * *

उपाय की उपस्थिति ही, पर्याप्त नहीं,
उपादेय की प्राप्ति के लिए,
अपाय की अनुपस्थिति भी अनिवार्य है।
और वह
अनायास नहीं, प्रयास साध्य है। (पृष्ठ २३०)

इसी कार्य-कारण सम्बन्ध को स्मरण कर बादल-दल प्रभाकर से जा भिडते हैं और कहते हैं-

दिन भर दीन-हीन-सा
दर-दर भटकता रहता है।
फिर भी,
क्या समझकर साहस करता है
सागर के साथ, विग्रह - सघर्ष हेतु ?

* * * * *

सागर का पक्ष ग्रहण कर ले,

* * * * *

सुख-शान्ति-यश का संग्रह कर। (पृष्ठ २३१-३३२)
अन्यथा/ ग्रहण की व्यवस्था अविलम्ब होगी।
जिससे तुम्हारी छवि-धूमिल होगी

बादलों के प्रभाव से प्रभाकर-निस्तेज अवश्य हुआ; किन्तु वह कहता है -

अरे ठगो। औरो को ठग कर, ठहाका लेने वालो।
अरे। खण्डित जीवन जीने वालो। पाखण्ड पक्ष ले उडने वालो
रहस्य की बात समझने में अभी समय लगेगा तुम्हें।

* * * * *

हिसा की हिसा करना ही, अहिंसा की पूजा है, प्रशंसा,
और, हिंसक की हिसा या पूजा, नियम से
अहिंसा की हत्या है -- नृशंसा।
धीरता ही वृत्ति वह, धरती की धीरता
और
काय-रता ही वृत्ति है वह, जलधि की कायरता है। (पृष्ठ २३३)

प्रभाकर को ग्रसित करने के लिए सागर ने राहु को आमन्त्रित किया। जिस प्रकार मृगराज के समक्ष मृग और विषधर के सम्मुख मेढक मनमानी नहीं कर सकता, उसी प्रकार प्रभाकर

राहु के समक्ष कैसे टिक सकता है। परिणाम-स्वरूप दिन में रात्रि, प्रकाश में अंधकार, स्तब्ध पवन, वन उपवन, नन्दन के कलरव में क्रन्दन-आक्रन्दन छा जाता है। पादप, लता, गुल्म आदि व्याकुल होते नजर आते हैं। इसलिए पक्षी-दल ने संकल्प किया कि –

सूर्य ग्रहण का संकट यह,
जब तक दूर नहीं होगा,
तब तक भोजन-पान का त्याग।
जन-रंजन, मन-रंजन का त्याग।
और तो और
अंजन-व्यंजन का भी। (पृष्ठ २४०)

सूर्य-ग्रहण से उत्पन्न विभीषिका ने चतुर्दिक् हाहाकार मचा दिया। इससे मेघों को बल मिला और उन्होंने मूसलाधार वर्षा की। इस माहौल में जब हवा काम नहीं करती तब दवा (उपाय) काम करती है। जब दवा (उपाय) काम नहीं करती तब दुआ (प्रार्थना) काम करती है। जब दुआ भी काम नहीं करती तब स्वयं युवा चेतना- शक्ति काम करती है (पृष्ठ २४१)।

धरती के कण-कण अनुनय-विनयपूर्वक कहते हैं –

माँ के मान का सम्मान हो,
राघव-वंश के अंश हैं ये
लाघव-वंश के प्रशंसक भी
परन्तु
अहं के संस्कार से संस्कारित
गारव-वंश के ध्वसंक हैं माँ। (पृष्ठ २४२)

ये पृथ्वी कण (धूलकण) माँ के चरणों में नमन कर आशीर्वचन की मंगल कामना करते हैं। तब धरती माँ कहती है –

'पाप-पाखण्ड पर प्रहार करो, प्रशस्त पुण्य स्वीकार करो'। (पृष्ठ २४३)

धरती-माँ के ये वचन सुन, धूलकण स्वाभिमानी स्वराज्यप्रेमी की भाँति जल-कणों को निरन्तर सोखते रहते हैं। परिणाम स्वरूप जल की एक बूँद भी पृथ्वी तक नहीं आ पायी। जल-कणों और भू-कणों का यह भीषण द्वन्द्व देखने इन्द्र का अवतरण होता है और वह भी गोपनीय इन्द्र-धनुष के रूप में, क्योंकि –

महापुरुष प्रकाश में नही आते,
आना भी नहीं चाहते,
प्रकाश – प्रदान में ही
उन्हे रस आता है। (पृष्ठ २४५)

इन पंक्तियों में परदे की ओट में रहकर खेल-खेलने वालों की कितनी मार्मिक व्यंजना हुई है।

धरती पर सागर के अत्याचारों से द्रवीभूत इन्द्र ने अपना पुरुषार्थ दिखाया। उसने बादलों पर अपने अमोघ अस्त्र का प्रहार किया। वज्राघात से आहत बादल रावण की तरह चीख पड़ते हैं। बादलों ने मेघ-गर्जना के साथ विद्युत्-चालन भी किया किन्तु बिजली भी काँपने लगती है। सारा सौर-मण्डल बहरा-सा हो जाता है, फिर भी सागर ने बादलों को आदेश दिया कि डटे रहो! ईंट का जवाब पत्थर से दो और इन्द्र के अमोघ अस्त्र के समक्ष रामबाण से काम लो। इससे बादलों में पुनः स्फूर्ति आ गई और उन्होंने अनवरत ओला-वृष्टि की। सन्त कवि ने सौर-मण्डल और भू-मण्डल की इस विषम परिस्थिति का इन शब्दों में वर्णन किया है, जो समसामयिक स्थिति-अणुयुद्ध (विश्व-युद्ध की सम्भावनाओं) की ओर संकेत करता है। इसकी इस भीषण विभीषिका के दुष्परिणाम क्या होंगे- शब्दों में बाँधना कठिन है –

ऊपर अणु की शक्ति काम कर रही है,
तो इधर नीचे

मनु की शक्ति विद्यमान।
ऊपर यन्त्र है, घुमड़ रहा है,
नीचे मन्त्र है, गुनगुना रहा है
एक मारक, एक तारक,
एक विज्ञान है,
जिसकी आजीविका तर्कणा है,
एक आस्था है,
जिसे आजीविका की चिन्ता नहीं
एक अधर में लटका है,
उसे आधार नहीं, पैर टिकाने,
एक को धरती की शरण मिली है,
यही कारण है, ऊपर वाले के पास,
केवल दिमाग है, चरण नहीं...
हो सकता है,
दीमक खा गये हों, उसके चरणों को,
नीचे वाला चलता भी है,
प्रसंगवश ऊपर भी चढ़ सकता है,
हाँ, ऊपर वालों का दिमाग चढ़ सकता है।
तब वह, विनाश का,
पतन का ही पाठ पढ़ सकता है। (पृष्ठ २४९)

इस प्रसंग में आचार्यश्री ने विज्ञान और धर्म, विज्ञान और आस्था का कितना मौलिक और समीचीन विवेचन किया है। पता नहीं कब इस बुद्धिवादी मानव का दिमाग सरक जाये और बुद्धि का ही विनाश कर बैठे। जब-तक मानव आस्थावादी नहीं होगा तब-तक विज्ञान की यह अंधीदौड़, लक्ष्यहीन चलती रहेगी और प्रक्षेपास्त्रों की होड़ में सहमी, सिसकती, कराहती मानवता अपने भविष्य के लिये आकुल-व्याकुल होती रहेगी। यह है, इस वैज्ञानिक युग की मानसिकता का एक बिम्ब।

ओलों और भू-कणों की यह टकराहट घण्टों चलती रहती है और कुछ ओले तो विकीर्ण होकर पृथ्वी पर ऐसे बिखर गये, जैसे -

स्वर्गों से बरसाई गई
परिमल - पारिजात पुष्प-पाँखुरियाँ ही
मंगल-मुस्कान बिखेरती,
नीचे उतर रही हों, धीरे-धीरे।
देवों से धरती का स्वागत अभिनन्दन ज्यों। (पृष्ठ २५१)

इस घटना-क्रम को भली-भाँति कुम्भ-समूह साक्षी के रूप में देखता रहता है, किन्तु उनके मुख-मण्डल पर किसी प्रकार का वैषम्य-भाव नजर नहीं आता है। उन्हें किसी भी प्रकार की क्षति नहीं पहुँची। अन्ततः भू-कणों की जय और बादलों और ओलों को पराजय का मुख ताकना पड़ा। फिर भी उनके क्रोध का शमन नहीं हुआ। भू-कणों ने इस प्रतिकूलता में भी अपने-अद्‌भुत साहस का परिचय दिया। यथा -

भूखे भू-कणों का साहस अद्‌भुत है,
त्याग-तपस्या अनूठी!
जन्म-भूमि की लाज,
माँ-पृथिवी की प्रतिष्ठा,
दृढ़-निष्ठा के बिना टिक नहीं सकती,

रुक नहीं सकती यहाँ, लुट जाती तभी ---- । (पृष्ठ २५२-५३)

भू-कणों की इस अद्भुत साहसिक भावना को स्मरण कर, शिल्पी अपने उपास्य की उपासना में तल्लीन हो जाता है। वह अर्थ-लोलुप नहीं है। किसी से कुछ माँगता नहीं है। वह परमार्थ के अभाव को दूर करना चाहता है। माँग-दुःख की अभिव्यक्ति नहीं है। दुख से आच्छन्न अन्तर के प्रकाश को किसकी आँखें देख सकती हैं ? शिल्पी की यही भावना है कि माँ धरती और जल का मान शमन हो जाये।

शिल्पी कुछ अज्ञात रहता है, क्योंकि वह भोग से ऊबकर योग में तल्लीन हो गया है। उसकी बुद्धि प्रभु चरणों की दासी बनी है, और उसके मुख मण्डल पर उदासी-सी दिख रही है। गुलाब का एक पौधा अपने शिल्पी स्वामी को धर्म-संकट में पड़ा देखकर, बोल उठता है - कि विकट से विकट संकट तो आपके स्मरण मात्र से कट जाते हैं। आपके संकट का शीघ्र अन्त हो। इसी समय गुलाब का काँटा भी संकट को 'काँटे से काँटा' निकालने की धमकी देता है। फूल, काँटे के क्रोध को शमन करते हुए, समयोचित बात करता है - जब सुई से काम नहीं चलता, तब तलवार का और जब फूल से काम नहीं चलता तब काँटे का उपयोग किया जाता है। यदि भूतल पर ही फल की प्राप्ति हो जाये तो शिखर पर चढ़कर श्रम-शक्ति का व्यर्थ व्यय करना उचित नहीं है।

पुष्प अपने सौरभ-संचारक पवन को स्मरण करता है, तत्क्षण विनयावनत सेवक की भाँति पवन का आगमन होता है। पवन की इस कर्त्तव्य-परायणता को सन्त-कवि ने इन शब्दों में अभिव्यक्ति दी है -

'जिसकी कर्त्तव्य-निष्ठा वह, काष्ठा को छूती मिलती है,
उसकी सर्वमान्य प्रतिष्ठा तो, काष्ठा को भी पार कर जाती है'। (पृष्ठ २५८)

पवन धरती के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए प्रलयंकारी रूप धारण करता है और बादलों को सम्बोधन कर कहता है -

अरे पथ-भ्रष्ट बादलो !
बल का सदुपयोग किया करो,
छल का न उपयोग किया करो।
छल-बल से,
हल नहीं निकलने वाला कुछ भी
कुछ भी करो या न करो,
मात्र दल का अवसान ही हल है। (पृ. २६१)

पवन अपने पूर्ण वेग से बादलों को विदीर्ण कर देता है और ओले सिर के बल सागर में जा गिरते हैं। कई दिनों के बाद नीलाकाश स्वच्छ नजर आता है और सौर-मण्डल हर्ष और उल्लास के साथ कह उठता है -

धरती की प्रतिष्ठा बनी रहे,
और
हम सबकी,
धरती में निष्ठा घनी रहे, बस। (पृ. २६२)

सम्पूर्ण सृष्टि में नवीनता का संचार होता है। वन-उपवन नई-नई कलियों से खिल उठते हैं। नयी उमंग, नयी तरंग, नया रंग, नया उल्लास, नयी पुलक, नयी ललक चतुर्दिक् नूतनता का साम्राज्य दिखाई देता है, किन्तु इस नव परिवर्तन से मौन शिल्पी प्रभावित नहीं हो सका। ताजे गुलाब की महक और पंछियों का कलरव भी शिल्पी के मौन को नहीं तोड़ सके। ऐसी स्थिति में सूर्य अपनी किरणों रूपी अँगुलियों के स्पर्श से शिल्पी की पलकों को सहलाता है, जिससे शिल्पी ने अनुभव किया जैसे माँ की ममता का मृदुल स्नेहिल स्पर्श हो रहा हो। उसकी पलकें खुल जाती हैं। उसने आलोकधाम दिनकर के दर्शन किये। उसके नेत्र अपार हर्ष से बरस पड़ते हैं। शिल्पी को स्वस्थावस्था में देख कुम्भ ने कहा -

परीषह – उपसर्ग के बिना कभी,
स्वर्ग और अपवर्ग की उपलब्धि,
न हुई, न होगी, त्रैकालिक सत्य है यह। (पृष्ठ २६६)

कुम्भ के इस कथन पर शिल्पी कहता है कि अल्पकाल में जितनी सफलता तुमने पायी है, उसकी मुझे आशा नहीं थी। अब मैं पूर्ण आश्वस्त हो गया हूँ कि आगे भी तुम अपनी साधना में सफलता पाओगे। अभी तो तुम्हारी यात्रा प्रारंभिक ही है। आगे अनेक घाटियों को पार कर, आग की नदी में अपने बाहुओं के बल पर, तैर कर ही तुम्हें पार लगना है। कुम्भ शिल्पी के ये वचन सुनकर कहता है –

जल और ज्वलनशील अनल में
अन्तर शेष रहता ही नहीं
साधक की अन्तर दृष्टि में।
निरन्तर साधना की यात्रा
भेद से अभेद की ओर
वेद से अवेद की ओर
बढती है, बढ़नी ही चाहिये
अन्यथा, वह यात्रा नाम की है,
यात्रा की शुरुआत अभी नहीं हुई है। (पृष्ठ २६७)

कुम्भ की ये पंक्तियाँ समीचीन, अत्यन्त मार्मिक और प्रभावी हैं। जीवन यात्रा में पल–पल पर व्यवधान और विपदायें अपने कौशल दिखाते हैं, किन्तु क्या दृढ–सकल्पी राही कभी इनके रास्ता रोकने पर भी रुक सका है ? वह तो अपने गन्तव्य तक पहुँचने के लिए हर मुसीबत का सामना साहस और धैर्य के साथ करने के लिए कटिबद्ध है। यह प्रेरक–प्रसंग हर प्राणी को अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए यथेष्ट है। साधक तो अपनी साधना में लीन, अडिग, अविकल्प, मौन और समभाव से प्रतिकूलताओं को भी अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सहयोगी मानता है, क्योंकि विषम परिस्थितियाँ ही तो उसकी कसौटी हैं, जिस पर उसे खरा उतरना है।

(घ) कथा–वस्तु का चतुर्थखण्ड "अग्नि की परीक्षा : चाँदी – सी राख" अपने आपमें एक खण्ड–काव्य है। इसका घटना–फलक विस्तृत है, किन्तु सन्त–कवि ने बड़े कौशल के साथ कथा–क्रम को टूटने नहीं दिया। घटनायें स्वयं बोलती हैं और कथा–क्रम क्रमशः आगे बढ़ता चलता है। आचार्य श्री के कथा – संयोजन की कुशलता की निपुणता के दर्शन यहीं होते हैं। प्रत्येक प्रसंग–कथा, इस प्रकार परस्पर सयुक्त है, कहीं भी विश्रृंखलता नजर नहीं आती, अपितु मुख्य कथा को मार्मिक बनाने और आगे बढ़ाने में प्रत्येक प्रसंग कथा का समान योगदान है।

इस खण्ड में कथा–वस्तु का आरम्भ अवा की तैयारी से होता है। कच्चे घड़े को पकाने का उपक्रम किया जा रहा है। इससे धरती का हृदय दहल उठता है। वह अपने 'धृति' नाम को सार्थक नहीं कर पा रही है, क्योंकि उसके वक्ष पर अवा लगना है। अवा की साफ–सफाई कर शिल्पी ने क्रमबद्ध लकड़ियाँ जमाईं हैं। सब लकड़ियों की ओर से बबूल की लकड़ी अपनी अन्तर्वेदना व्यक्त करती हुई कहती है –

जन्म से ही हमारी प्रकृति कड़ी है,
हम लकड़ी जो रहीं,
लगभग धरती को जा छू रही हैं,
हमारी पाप की पालड़ी भारी हो पड़ी है।

कभी–कभी हम बनाई जातीं
कड़ी से और कड़ी छड़ी
अपराधियों की पिटाई के लिए।
प्रायः अपराधी–जन बच जाते,
निरपराध ही पिट जाते,
और उन्हें,
पीटते–पीटते टूटतीं हम।
इसे हम गणतन्त्र कैसे कहें ?
यह तो शुद्ध "धनतन्त्र" है,
या
यह मनमाना "तन्त्र है। (पृष्ठ २७१)

लकड़ी आगे कहती है कि हमें निमित्त बनाकर, निरपराध कुम्भ को जलाने की योजना है। हमें यह कड़वा घूँट अब पीना ही पड़ेगा। ऐसा सुनकर, शिल्पी मृदु वचनों से लकड़ियों को सम्बोधित करता हुआ कहता है –

कुम्भ के जीवन को ऊपर उठाना है,
और इस कार्य में,
और किसी को नहीं,
तुम्हें ही निमित्त बनना है। (पृष्ठ २७३)

लकड़ियाँ अपनी स्वीकारोक्ति देती हैं और विविध क्रियाओं द्वारा अवा तैयार किया जाता है। शिल्पी नवकार–मन्त्र का जापकर अग्नि प्रज्वलित करता है, किन्तु कुछ ही क्षणों में आग बुझ जाती है। लगता है, इस शुभ कार्य में अग्नि ने अपने सहयोग की स्वीकृति नहीं दी है। शिल्पी पुनः शंकित–भाव से अग्नि जलाता है कि जलती हुई अग्नि कह उठती है –

मैं इस बात को मानती हूँ कि
अग्नि–परीक्षा के बिना आज तक
किसी को भी मुक्ति मिली नहीं,
न ही भविष्य में मिलेगी।
जब यह नियम है इस विषय में,
फिर!
अग्नि की परीक्षा नहीं होगी क्या ?
मेरी परीक्षा कौन लेगा ?

* * * * *

जिसका जीवन औरों के लिए कसौटी बना है,
वह स्वयं के लिए भी बने, यह कोई नियम नहीं है।

* * * * *

सदाशय और सदाचार के साँचे ये ढले।
जीवन को ही अपनी सही कसौटी समझती हूँ।
फिर कुम्भ को जलाना तो दूर,
जलाने का भाव भी मन में लाना,
अभिशाप–पाप समझती हूँ, शिल्पी जी। (पृष्ठ २७५–२७६)

उपर्युक्त संवाद सुनता हुआ कुम्भ, अनुनय विनय के साथ अग्नि से कहता है –

शिष्टों पर अनुग्रह करना,
सहज–प्राप्त–शक्ति का,
सदुपयोग करना है, धर्म है।

और दुष्टों का निग्रह नहीं करना,
शक्ति का दुरुपयोग करना है, अधर्म है। (पृष्ठ २७६-२७७)

इस पर कुम्भ कहता है – मैं दोषों का खजाना हूँ। मुझमें अगणित दोष भरे हुए हैं। जब-तक इन दोषों को नहीं जलाया जाता, तब-तक मैं निर्दोष नहीं हो सकता। अतः मुझे नहीं मेरे दोषों को जलाओ –

मेरे दोषों को जलाना ही,
मुझे जिलाना है,
स्व-पर दोषों को जलाना,
परम-धर्म माना है सन्तों ने।
दोष अजीव हैं, नैमित्तिक हैं,
बाहर से आगत हैं कथंचित्;
गुण जीवगत हैं,
गुण का स्वागत है।
तुम्हें परमार्थ मिलेगा इस कार्य से,
इस जीवन को अर्थ मिलेगा तुमसे
मुझमें जल-धारण करने की शक्ति है,
जो तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है,
उसकी पूरी अभिव्यक्ति में
तुम्हारा सहयोग अनिवार्य है। (पृष्ठ २७७)

कुम्भ का आशय समझकर अग्नि प्रमुदितमना हो अपने प्रचण्ड वेग से जलने लगती है। सारा अवा धुँयें से भर जाता है और कुछ ही क्षणों में निर्धूम अग्नि धधकने लगती है। अग्नि के स्पर्श से कुम्भ की आत्मा उज्ज्वल होती हुई, सहज-शान्ति में डूबने लगती है। वह अग्नि की शुद्ध-सुरभि को सूँघने और निर्विकार निधूम अग्नि के अवलोकन का उपक्रम करता हुआ, धर्म, दर्शन और अध्यात्म के अन्यान्य प्रसंगों में खो जाता है। इधर शिल्पी गहरी निद्रा में स्वप्न देखता है कि कुम्भ-रुदन करता हुआ, भूख-प्यास की याचना करता है और वह उसे धैर्य-साहस की शिक्षा देता हुआ-भोजन-पान की सामग्री ले अवा की ओर उद्यत होता है कि उसकी नींद टूट जाती है।

शिल्पी संध्या-वंदन से निवृत हो, उषा-काल से पूर्व ही, अवा का अवलोकन करने के लिए उत्सुक है। उसे पूर्ण विश्वास है कि कुम्भ और अग्नि दोनों अपनी-अपनी परीक्षा में खरे उतरेंगे, किन्तु विपरीत स्वप्न के कारण शिल्पी को धैर्य नहीं है। अपनी ओर शिल्पी के बढ़ते हुए कदमों को देखकर, अवा ने कुम्भ की ओर से कहा – हे शिल्पी ! स्वप्न प्रायः निष्फल ही होते हैं। इन पर अधिक विश्वास हानिकारक है। क्योकि –

'स्व' यानी अपना,
'प' यानी पालन-संरक्षण
और
'न' यानी नहीं
जो निज-भाव का रक्षण नहीं कर सकता,
वह औरों को क्या सहयोग देगा ?
अतीत से जुड़ा। मीत से मुड़ा,
बहु उलझनों में उलझा मन ही,
स्वप्न माना जाता है।
जागृति के सूत्र छूटते हैं
स्वप्न दशा में,
आत्म-साक्षात्कार सम्भव नहीं तब,

सिद्ध-मन्त्र भी मृतक बनता है। *(पृष्ठ २९५)*

इस प्रकार अवा की आवाज सुनकर शिल्पी अवा के और निकट आता है और स्वप्न को अक्षरशः असत्य मान कर सोचता है ..... 'कुम्भ की कुशलता सो अपनी कुशलता' – (पृ. २९६) और सोल्लास फावड़े से अवा में जमी हुई राख सावधानीपूर्वक हटाने लगता है। ज्यों-ज्यों राख हटती जाती है, त्यों-त्यों शिल्पी का कौतूहल बढ़ता जाता है। शिल्पी सोचता है – 'पावन' (पवित्र) व्यक्तित्व का भविष्य भी पावन ही होगा, भले ही इतिहास अपावन क्यों न हो, (पृष्ठ २९७)। सकुशल कुम्भ अवा से बाहर निकाला जाता है। शिल्पी क्रमशः कुम्भों को धरती पर रखता जाता है, क्योंकि –

धरती की थी, है, रहेगी, माटी यह।
किन्तु
पहले धरती की गोद में थी
आज धरती की छाती पर है,
कुम्भ के परिवेश में। *(पृष्ठ २९९)*

अवा से बाहर आये दो-तीन दिन के अनन्तर ही कुम्भ के मन में शुभ-भाव उमड़ने लगते हैं। वह कहता है – अब पतन नहीं, निरन्तर उत्तरोत्तर उन्नति ही उन्नति। अब दुर्लभ कुछ नहीं, सब कुछ प्रत्यक्ष और समक्ष .. क्योंकि भक्त का भाव भगवान् को भी अपनी ओर खींच लेता है और वह भाव है – पात्र-दान और अतिथि-सत्कार।

अतिथि भी ऐसा, जो पद-यात्री, कर-पात्री, पीयूष-पायी, परम-हंस, अपने प्रति वज्र-सम कठोर और दूसरों के प्रति नवनीत सम मृदु, मानापमान में सम, सिंह-सम निर्भीक, प्रभाकर-सम परोपकारी, निद्राजयी, इन्द्रिय-विजयी, जलाशय-सम सदाशयी, हित-मित भाषी, यशस्वी, मनस्वी और तपस्वी हो।

इधर नगर-सेठ ने स्वप्न देखा कि उसने अपने प्रागण में मंगल-घट लेकर महासन्त का स्वागत किया है। सेठ ने यह स्वप्न अपने परिजनों को सुनाया और तत्काल एक सेवक शिल्पी के यहाँ घट लेने भेज दिया। सेवक ने स्वामी की बात शिल्पी को सुनाई तो शिल्पी अपने श्रम की सार्थकता पर प्रसन्नता का अनुभव करता है। उसने सेवक को एक कुम्भ दिया। सेवक एक कंकण उठाकर कुम्भ की परीक्षा करता है, कि तत्क्षण कुम्भ विस्मय के स्वर में बोल उठा –

क्या अग्नि-परीक्षा के बाद भी
कोई परीक्षा-परख शेष है, अभी ?
करो, करो परीक्षा।
पर को परख रहे हो,
अपने को तो परखो जरा !

* * * * *

"परीक्षक बनने से पहले,
परीक्षा में पास होना अनिवार्य है,
अन्यथा
उपहास का पात्र बनेगा वह।" *(पृष्ठ ३०३)*
इस पर सेवक कुम्भ से कहता है –
"तुमने अग्नि-परीक्षा दी है,
अग्नि ने जो परीक्षा ली है तुम्हारी,
वह कहाँ तक सही है,
यह निर्णय
तुम्हारी परीक्षा के बिना सम्भव नहीं।
यानी, तुम्हें निमित्त बनाकर

अग्नि की अग्नि परीक्षा ले रहा हूँ।" *(पृष्ठ ३०३-३०४)*

सेवक कुम्भ को हाथ में ले, सात-बार बजाता है, जिससे सात स्वर – सा, रे, ग, म, प, ध, नि – झंकृत होते हैं –

सा, रे, ग, म, यानी /सभी प्रकार के दुःख
प, ध यानी पद स्वभाव, / नि यानी नहीं
दुःख आत्मा का स्वभाव-धर्म नहीं हो सकता।
मोह-कर्म से प्रभावित आत्मा का
विभाव परिणमन मात्र है वह
नैमित्तिक परिणाम कथंचित् पराये हैं। *(पृ. ३०५)*

इन सप्त स्वरों का भाव समझना ही सही संगीत में खोना है। सही संगी को पाना है।

सेवक सोचता है, ऐसी अद्‌भुत शक्ति कुम्भ में कहाँ से आयी। तक कुम्भ की ओर से उत्तर मिलता है –

यह सब शिल्पी का शिल्प है,
अनल्प-श्रम, दृढ- संकल्प,
सत्-साधना-संस्कार का फल।

* * * * *

यह जो मेरा शरीर
घनश्याम सा श्याम पड़ गया है,
जो जला नहीं
जिस भाँति
वाद्य – कला-कुशल शिल्पी
मृदंग मुख पर स्याही लगाता है,
उसी भाँति
शिल्पी ने मेरे अंग-अंग पर
स्याही लगा दी है,
जो भाँति-भाँति के बोल/ खोल देते हैं।
धा ..... धिन् ..... धिन् .... धा
धा ..... धिन् .. .. धिन् .... धा
चेतन भिन्ना चेतन भिन्ना
ता ..... तिन् ..... तिन् .... ता
ता .. .. तिन् ..... तिन् .... ता
का तन .... चिन्ता, का तन ... चिन्ता ?
घूँ...... घूँ...... घूँ...... *(पृष्ठ ३०६)*

ग्राहक के रूप में आया सेवक कुम्भ के बदले में शिल्पी को कुछ मूल्य के रूप में धन देना चाहता है, किन्तु शिल्पी कहता है–

आज दान का दिन है,
आदान-प्रदान लेन-देन का नहीं,
समस्त दुर्दिनों का निवारक है यह
प्रशस्त दिनों का प्रवेश-द्वार।

शिल्पी सेवक से कुछ भी मूल्य नहीं स्वीकार करता। वह उपहार स्वरूप धन्यवाद देकर सानन्द घर की ओर प्रस्थान करता है। घर पहुँचने पर, सेठ ने सेवक के हाथ से कुम्भ लेकर, शुद्ध जल से उसका प्रक्षालन किया और दायें हाथ की अनामिका से कुम्भ पर मलय चंदन से स्वस्तिक चिह्न अंकित किया, जो स्वयं का प्रतीक है। स्वस्तिक की चारों पाँखुड़ियों में चार-चार

बिंदियाँ लगाईं, जो संसार की चारों गतियों के सुख-शून्यता की प्रतीक हैं। तत्पश्चात् चन्द्र-बिन्दु सहित ओंकार लिखा, जो योग और उपभोग की स्थिरता के केन्द्र का सूचक है। कुम्भ के कण्ठ को शोभित करने के लिए हल्दी की दो रेखायें खींची गईं और उनके बीच में कुमकुम का पुट दिया गया। इस प्रकार हल्दी, कुंकुम, केशर और चन्दन की महक से सारा वातावरण सुगन्धित हो गया। कुम्भ के मुख पर चार-पाँच पान और श्रीफल रखा गया। स्फटिक मणि की माला कुम्भ के गले में डाली गई और उस मंगल-कलश को आठ पहलूदार चन्दन की चौकी पर रखा गया।

दिनचर्या केअनुसार सेठ निर्मल भावों से प्रभु की पूजा-अर्चना करता है और इधर आँगन में बालिकाओं द्वारा चौक पूरा जाता है। अतिथि-सन्त के आगमन का समय निकट है। नगर में जगह-जगह, दूर-दूर तक अतिथि के पड़गाहन के लिए दम्पत्ति खड़े हैं, अपने यहाँ अतिथि के निर्विघ्न आहार की मनोकामना लिये।

सेठ पूजा-अर्चना से निवृत्त, मंगल-घट हाथ में लेकर, आँगन में खड़ा है। इतने में ही अतिथि का आगमन-दर्शन होता है। दातागण जयजयकार करते हैं। अतिथि कदम-दर-कदम आगे बढ़ते जाते हैं। इससे कुछ दाता खिन्न और उदास होते हैं तो कुछ अपने भाग्य को रोते हैं। इसी बीच कुम्भ सेठ को उद्‌बोधित करता है-

पात्र से प्रार्थना हो/ पर अतिरेक नहीं
इस समय सब कुछ/ भूल सकते हैं,
पर विवेक नहीं।
तन, मन और वचन से
दासता की अभिव्यक्ति हो,
पर उदासता की नहीं।
अधरों पर मन्द-मुस्कान हो,
पर परिहास नहीं।
उत्साह हो, उमंग हो,
पर उतावली नहीं,
अंग-अंग से /विनय का मकरंद झरे
पर दीनता की गंध नहीं। (पृष्ठ ३१९)

कुम्भ के इस उद्‌बोधन से आचार-संहिता सामने आई और सेठ ने संयत होकर नजदीक आते अतिथि का स्वागत किया। अतिथि के पड़गाहन की सविस्तार क्रिया का विवेचन हुआ है। प्रासुक जल से भरे माटी के कुम्भ के जल से गुरु के पदों का प्रक्षालन होता है। इसी समय गुरु-पद-नख-दर्पण में कुम्भ अपने प्रतिबिम्ब का दर्शन कर धन्य-धन्य हो जाता है और उल्लास से ओत-प्रोत हृदय कह उठता है-

शरण, चरण हैं आपके/ तारण-तरण जहाज, ।
भव-दधि तट तक ले चलो, / करुणा कर गुरुराज। (पृष्ठ ३२५)

अतिथि के आहार-दान की क्रिया का सविस्तार विवेचन हुआ है। कुम्भ को गुरु के आहार-दान का प्रथम योग मिला, जबकि स्वर्ण, रजत, स्फटिक-मणि आदि के पात्रों को यह संयोग नहीं मिल सका। आहार की समाप्ति के तत्क्षण धर्मोपदेश देकर गुरु उपवन की ओर प्रस्थान करते हैं। सेठ गुरु के साथ-साथ उपवन तक जाता है। सेठ की भव्यात्मा लौटना नहीं चाहती है। उसके मन में अनेक शंकायें उठती हैं। गुरु; सेठ की जिज्ञासा की तुष्टि के लिए; नियति और पुरुषार्थ को निम्नांकित पंक्तियों में परिभाषित करते हैं-

"नि" यानी निज में ही,
"यति" यानी यतन-स्थिरता है,
अपने में लीन होना ही नियति है।

निश्चय से यही यति है
और
"पुरुष" यानी आत्मा–परमात्मा है
"अर्थ" यानी प्राप्तव्य प्रयोजन है,
आत्मा को छोड़कर,
सब पदार्थों को विस्मृत करना ही
सही पुरुषार्थ है।

नियति और पुरुषार्थ के सही स्वरूप को जानकर सेठ उदास होकर, घर की ओर चल देता है।

इधर आहार–दान के परिणाम–स्वरूप पूरा सेठ–परिवार अपार हर्ष में डूबा हुआ है। कुम्भ भी अपने को पुण्यशाली अनुभव कर रहा है। सम्पूर्ण परिवार एक साथ भोजनार्थ बैठा हुआ है, किन्तु सेठ के चेहरे से उदासी झलक रही है, जिसे देखकर कुम्भ कहता है–

सन्त–समागम की यही तो सार्थकता है,
संसार का अन्त दिखने लगता है,
समागम करने वाला भले ही,
तुरन्त सन्त–संयत/ बने या न बने
इसमें कोई नियम नहीं है /किन्तु वह
संतोषी अवश्य बनता है।
सही दिशा का प्रसाद ही
सही दशा का प्रासाद है।

अन्य प्रासगिक कथनों को सुनकर सेठ के मन में विरक्ति का भाव जागृत हो जाता है। वह अपने परिवार के बीच अतिथि के समान माटी का पात्र उपयोग करने की भावना व्यक्त करता है। परिवार–जन भी यही कहते हैं–"हमारी भी यही भावना है। सेठ–परिवार के भावों की इस परिणति को देखकर स्वर्ण की थालियाँ, कलशियाँ, लोटे, प्याले, कटोरे एवं स्फटिक मणि की झारियाँ आदि आश्चर्य–चकित हो जाते हैं। पीतल का कलश अपने भाग्य को रोता है तो स्वर्ण–कलश उत्तेजित हो जाता है, कि माटी का यह सत्कार और मेरा यह दुत्कार। नीच को अपनाना, ऊँचा उठाना, शारीरिक, आर्थिक, शैक्षणिक सहयोग करना उचित है, किन्तु–

नीच बन नहीं सकता उच्च
इस कार्य का सम्पन्न होना,
सात्विक संस्कार पर आधारित है।

जैसे मठे को छोंक देने से स्वादिष्ट और सुपाच्य होता है। दूध में मिश्री मिलाने से दूध मीठा और बलबर्द्धक होता है। पर; दूध को छोंकने और मठे में मिश्री मिलाने से विपरीत स्थिति ही होगी।

स्वर्ण–कलश की उत्तेजनापूर्ण बातें सुनता हुआ सेठ शान्तिपूर्वक कहता है कि मात्र माटी–रज का मूल्य नहीं है। वह अमूल्य (पूज्य) तब बनती है, जब श्री चरणों का संसर्ग पा जाती है– वह–चरण पूज्य होते हैं, जिनकी पूजा आँखें करती हैं, ऐसे चरण को छोड़कर अन्यत्र आचरण न कर। साधु–संतों की विनीत–दृष्टि चरणों पर रहती है, क्योंकि आँखें अनन्त दुःखों की खान हैं, इसलिए वे आँखों पर विश्वास नहीं करते। समता के धनी श्रमण (साधु) का प्रभाव मेरे जीवन पर पड़ा है। ऐसा कहता हुआ सेठ ज्यों ही भोजन प्रारम्भ करता है कि कलश पुनः अपनी व्यंग्योक्तियों की बौछार करने लगता है– "कोष के श्रमण बहुत बार मिले हैं, होश के श्रमण होते विरले ही–"जो उच्च–नीच, स्वर्ण–माटी का भेद–भाव करता, वह समता धारी–सन्त हो नहीं सकता। ऐसे नामधारी सन्त की उपासना से संसार का नाश नहीं हो सकता।

स्वर्ण–कलश के कटु–वचन सुनकर, माटी के कुम्भ में भरे पायस ने कहा–"तुम पाप–पंक में सने हो। तुममें पायस नहीं है इसलिए–पावन की पूजा रुचती नहीं तुम्हें, पावन को पाखण्ड कहते

हो तुम।" तुम स्वर्ण हो। माटी स्वर्ण उगलती है। तुम माटी के उगाल हो। माटी में बोया गया बीज, समुचित जलवायु पाकर सहस्र गुना फलता है। यदि माटी अपना स्वभाव-धर्म छोड़ दे तो प्रलय सम्भाव्य है। तुम पूँजीवाद के प्रतीक, गुलामी के आधार और अशान्ति के कारण हो, इसीलिए तुम्हें जमीन में गाड़ा जाता है। तुम मान को छोड़कर, माँ, माटी का सम्मान करो, कृतज्ञ बनो। जिस प्रकार दीपक और मशाल सामान्यतः प्रकाश के साधन हैं, किन्तु इनका गुण-धर्म अलग-अलग है। मशाल असंयत है, हानिकर भी हो सकती है। इसमें कई दुर्गुण हैं, जबकि दीपक संयमशील है। इसकी कई विशेषतायें हैं, छोटा-सा बालक भी अपने नन्हें-नन्हें करों में दीपक लेकर चल सकता है, मशाल नहीं।

हे स्वर्ण-कलश! तुम तो हो मशाल के समान, कलुषित आशयशाली,
और
माटी का कुम्भ है। पथ-प्रदर्शक दीप-समान,
तामस-नाशी /साहस, सहंस-स्वभावी। (पृष्ठ ३७१)

कुम्भ ने "पर-निन्दा के निमित्त बना"-अपने को धिक्कारते हुए प्रभु से प्रार्थना की - हे प्रभो! निन्दा-स्तुति, उत्थान-पतन, धन-निर्धन, गुण-निर्गुण,-यह गुण-वैषम्य क्यों ? मुझे समता-भाव प्रदान कीजिये। कुम्भ की इस प्रार्थना पर स्फटिक की झारी ने चिढ़कर कहा-अरे पापी! पाप पूर्ण भावों की प्रार्थना से प्रभु प्रसन्न नहीं होते। पावन की प्रसन्नता तो पाप के त्याग पर आधारित है। तुमने पाप का इतना संग्रह किया है कि वह कभी धुल ही नहीं सकता। बार-बार अग्नि-परीक्षा की दुहाई देना, अपने को निष्पाप सिद्ध करने के बजाय, महापाप ही है। अग्नि-परीक्षा तो बबूल की लकड़ी भी देती है और एक ही बार में चाँदी के समान चमकती राख बनकर शोभा पाती है।

इसी बीच कुम्भ कहता है-सब कोयलों में बबूल के कोयले काले भी तो होते हैं, वह क्यों ? बता दो। झारी उत्तर देती है-अग्नि का अनुपात कम होने से लकड़ी पूर्ण जल न सकने के कारण कोयले का रूप धारण कर लेती है, अन्यथा राख बनती है। इसमें जलांश नहीं, अग्नि का दोष होता है। रे मुर्ख! तुझसे अधिक बात करना समुचित नहीं है और झारी अपना मुँह मोड़ लेती है।

तत्क्षण कुम्भ कहता है कि पाप के विषय में अपनी बुद्धि से तुमने जो निर्णय लिया है, वह विपरीत है। मैं केवल इतना बताना चाहता हूँ कि-

"स्व" को स्व के रूप में,
"पर" को पर के रूप में,
जानना ही सही ज्ञान है
और
"स्व" में रमण करना,
सही ज्ञान का "फल"। (पृष्ठ ३७५)

विषयी, भोगी, इन्द्रिय-लोलुप ही पर-पदार्थों का स्वामी बनना चाहता है और यही पाप का बाप है। अरी झारी! तू जरा अपनी ओर तो निहार। तू कितना रंग बदलती है? अपने निकट आये पदार्थों के गुण-धर्म को आत्मसात् कर लेती है। तू मायाविनी है। तुझपर समता की छाया तक नहीं पड़ी है। मैं अपना क्या परिचय दूँ। मेरा सब कुछ खुला है, आकाश के समान। कुछ भी आच्छादित नहीं है। मेरी सदा-सर्वदा एक-सी दशा है, इसी का नाम समता है। इसीलिए तो साधु-सन्त माटी की शरण-भू-शयन-की साधना करते हैं और समता की सखी मुक्ति, समता-सेवी भू-चरों का वरण करती है। समझी पाप की पुतली झारी। ऐसा कहता हुआ कुम्भ मौन-धारण कर लेता है।

झारी का सम्बोधन सुन, उसमें भरा अनार का रस लाल-पीला हो उठता है। वह कहता है-श्रमण की श्रमणता, समता-सुलीनता की छवि निरख ली है, क्योंकि तट के स्पर्श मात्र से पानी की गहराई का अनुमान लग जाता है। अधर, चाँदी की तश्तरी में पड़ा केसरिया हलवा

(हलुआ) अनार के रस का समर्थन करता हुआ कहता है–"श्रमण की सही मीमांसा की तुमने"। इसी बीच केशर ने कहा–

स्वभाव समता से विमुख हुआ जीवन,
अमरत्व की ओर नहीं
समरत्व की ओर/ मरण की ओर,
लुढ़क रहा है।
जीवन का, न यापन ही
नया पन है और नैयापन। (पृष्ठ ३८१)

इस प्रकार कुम्भ और अन्य पात्रों के बीच वाद–विवाद चलता रहता है। प्रायः सभी पात्रों ने माटी का उपहास किया और उसे मूल्यहीन समझा। क्योंकि–

प्रायः बहुमत का परिणाम
यही तो होता है,
पात्र भी अपात्र की कोटि में आता है
फिर/ अपात्र की पूजा में पाप नहीं लगता।

सेठ–परिवार का भोजन–पान पूर्ण हुआ। समयान्तराल से पूरा परिवार निन्द्रा में लीन है, किन्तु सेठ अकेला करवटें बदल रहा है। उसे नींद नहीं आती है। सम्पूर्ण शरीर तवा के समान तप रहा है। कण्ठ अवरुद्ध है। नेत्रों में अतिशय जलन हो रही है। जबकि सेठ का प्रकोष्ठ वातानुकूलित है, फिर भी सेठ का कपाल तापाग्नि से धधक रहा है। रक्त–सेवी एक मच्छर बार–बार सेठ के सिर पर बैठने का प्रयत्न करता है, किन्तु ताप के कारण उसकी पिपासा दुगुनी हो जाती है। उसके अंग–अंग झुलस जाते हैं। वह कह उठता है–

अरे! धनिकों का धर्म दमदार होता है,
उनकी कृपा कृपणता पर होती है,
उनके मिलने से कुछ मिलता नहीं,
काकतालीय–न्याय से/ कुछ मिल भी जाय,
वह मिलन लवण–मिश्रित होता है,
पल में प्यास दुगुनी हो उठती है।

मच्छर की यह व्यंग्योक्ति सुनकर, मत्कुण (खटमल) भी सेठ के इर्द–गिर्द चक्कर लगाकर कहता है–

सही समय पर/ सही दिशा दी तुमने,
दम्भी–लोभी–कृपण की /परिभाषा दी तुमने,

* * * * *

मानव के सिवा, इतर प्राणी–गण
अपने जीवन–काल में,
परिग्रह का संग्रह करते भी कब ? (पृष्ठ ३८६)
मत्कुण कहता है कि मैं मानता हूँ कि–
जीवनोपयोगी कुछ पदार्थ होते हैं,
गृह–गृहिणी घृत–घटादिक,
उनका ग्रहण होता ही है,
इसीलिए सन्तों ने
पाणि–ग्रहण–संस्कार को
धार्मिक संस्कृति का
संरक्षक एवं उन्नायक माना है।
परन्तु खेद है कि

लोभी पापी मानव
पाणि–ग्रहण को भी
प्राण–ग्रहण का रूप देते हैं। (पृष्ठ ३८६)

मनु की संतान कहलाने वाले महामानव, देने के नाम पर बगलें झाँकने लगते हैं। सेवकों से अनुचित सेवा लेते और अनुचित वेतन का वितरण करते हैं। मत्कुण सेठ से कहता है–

सूखा प्रलोभन मत दिया करो,
स्वाश्रित जीवन जिया करो,
कपटता की पटुता को/ जलांजलि दो,
गुरुता की जनिका लघुता को/ श्रद्धाजलि दो।
शालीनता की विशालता में/ आकाश समा जाय,
और
जीवन उदारता का उदाहरण बने।
अकारण ही,
पर के दुःख का सदा हरण हो।

मत्कुण कहता है–मैं छोटा हूँ, बड़ा नहीं। निर्धन हूँ, (किसी के मरण का कारण नही) घातक नहीं, निर्बल हूँ, दूसरे के बल पर नहीं इतराता। मैं मंत्र–तंत्र–षड्यंत्र में नहीं पड़ता। मेरा जीवन संयत है। मैं छिन्द्रान्वेषी नहीं हूँ, छिद्र में रहता अवश्य हूँ। इस प्रकार मत्कुण के मुख से ऐसे वचन सुनकर सेठ का मन प्रसन्न और प्रशिक्षित हो उठता है। दुःख भरी लम्बी प्रतीक्षा की रात्रि के बाद, सुख का प्रातः काल होता है। प्रातः होते ही एक से एक विशेषज्ञ वैद्य सेठ की चिकित्सा हेतु आते हैं, अपने–अपने कौशल में पारंगत। निदान रूप सभी का अभिमत एक है कि इन्हें–"दाह का रोग हुआ है आह के योग से", चाह का भोग हुआ है और इन्हें इतनी चिन्ता नहीं करना चाहिये–

थोड़ी–सी/ तन की भी चिन्ता होनी चाहिये,
तन के अनुरूप वेतन अनिवार्य है,
मन के अनुरूप विश्राम भी।
मात्र दमन की प्रक्रिया से,
कोई भी क्रिया, फलवती नहीं होती है,
केवल चेतन–चेतन की रटन से,
चिन्तन–मनन/ से कुछ नहीं मिलता। पृ. ३९१

जिस प्रकार गम के बिना प्रेम नहीं, प्रेम के बिना रीति नहीं और रीति के बिना गीत नहीं होता, उसी प्रकार प्रकृति के विपरीत चलना साधना की रीत नहीं है। प्रकृति पुरुष की सहचरी है। उसके विलय से पुरुष के जीवन का भी विलय हो जाता है। यह स्पष्ट है कि प्रकृति यानी नारी में वासना का वास नहीं है। उसमें सुरभि की सुवास अवश्य है। विविध विकार–युक्त पुरुष तृप्ति हेतु, प्रकृति की गोद में विश्रान्ति पाता है और उसे यह अनिवार्य होता है। जिस प्रकार इमली का स्मरण करने मात्र से प्यासे के मुख में पानी आ जाता है, किन्तु प्यासे के मुख में जाकर भी इमली के मुख में पानी नहीं आता, उसी प्रकार अनुरक्ता, आसक्ता प्रकृति पुरुष में। युगों–युगों से पुरुष का यही पागलपन और नीचता है कि अपनी हवस के लिए प्रकृति को विवश करता रहा, जबकि प्रकृति युगों–युगों से स्ववश हो, पायस बन बरसती है और पुरुष को स्ववश होने का पथ प्रशस्त करती है।

पुरुष और प्रकृति के खेल को संसार की संज्ञा देना मूर्खता और मोह की महिमा है। खिलाड़ी तो पुरुष है प्रकृति खिलौना मात्र। "प्रकृति का प्रेम पाये बिना पुरुष का पुरुषार्थ फलता नहीं है। यहाँ पुरुष एवं प्रकृति क्रमशः आत्मा एवं भोग्यभूत बाह्य भौतिक वस्तुओं के लिए भी प्रतीकार्य में प्रस्तुत हुए हैं।

इस प्रकार चिकित्सकों के मुख से प्रकृति का परिचय पाकर सेठ परिवार ने यह स्वीकार

कर लिया और निवेदन किया कि सेठ के रोग का शीघ्र उपचार किया जाये। निदान रूप औषधि और पथ्य का शत–प्रति–शत पालन किया जायेगा। चिकित्सा–शुल्क ससम्मान मनवांछित प्रदान किया जायेगा। चिकित्सक की दृष्टि शुल्क की ओर नहीं रहती, क्योंकि वह तो स्वतः मिलती ही है। किन्तु कालिकाल का प्रभाव। आजीविका जीभिका बन गई है अर्थात् ऐशो–आराम के साधनों की पूर्ति की दुराशा ने जीवन–लक्ष्य से च्युत कर दिया है। यदि लक्ष्य बना भी लिया जाये तो कदम नहीं बढ़ते, बढ़ भी जायें तो स्थिर नहीं रह सकते–ऐसा देखने–सुनने में–नितप्रति आता है। धन–संचय ही प्रधान हो गया है। समस्त कलाओं के मूल्याकन का मापदण्ड अर्थ (धन) हो गया है। धन–लोलुपता प्रवृत्ति बन गई है, जबकि "कला" शब्द अपना अर्थ स्वयं खोलता हुआ कहता है–

"क" यानी आत्मा–सुख है,
"ला" यानी लाना–देता है,
कोई भी कला हो,
कला–मात्र से जीवन में,
सुख–शान्ति–सम्पन्नता आती है।
न अर्थ में सुख है,/न अर्थ से सुख। (पृष्ठ ३९६)

विषय–भोग–लिप्सा से निर्लिप्त परिवार के मुख से इस प्रकार कला–विषयक वचन सुनकर चिकित्सकगण सावधान हो जाते हैं और सेठ–परिवार प्रासंगिक चर्चा में परिवर्तन लाता है। इसी बीच माटी का कुम्भ बोल उठता है–पथ्य का सही पालन किया जाये तो औषधि की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। श, स और ष रूप बीजाक्षरों (ओंकार ध्वनि के साथ) के उच्चारण मात्र से शारीरिक, मानसिक तो क्या जन्म–जरा–मृत्यु रूप रोग भी नौ दो ग्यारह हो जाते हैं। शकार–त्रय स्वतः परिचय देता हुआ कहता है–

"श" यानी /कषाय का शमन करने वाला,
शंकर का द्योतक, शंकातीत/ शाश्वत सुख की शाला।
"स" यानी, समग्र का साथी, जिसमें/ समष्टि समाती,
संसार का विलोम रूप/ सहज सुख का साधन,
समता का अजस्र स्रोत/ और
"ष" की लीला निराली है।
"प" का पेट फाड़ने पर, "ष" का दर्शन होता है–
"प" यानी, पाप और पुण्य, जिनका परिणाम संसार है,
जिसमें भ्रमित हो पुरुष भटकता है इसीलिए जो,
पुण्यापुण्य के पेट को फाड़ता है /"ष" होता है, कर्मातीत। (पृष्ठ ३९८)

"भू सत्तायां"–धातु की महत्ता निरूपित करते हुए भूत, भविष्य, भाव, प्रभाव, भावना, सम्भावना, भुवन, भूधर, भूचर, भूख, भूमिका, भव, वैभव और स्वयंभू तक का आधार है भू ऐसा युग के आदि से ही माना गया है। भूमि का भूपना है– माटी, इसलिए यह उक्ति "माटी, पानी और हवा, सौ रोगों की एक दवा"–चरितार्थ होती है। (पृष्ठ ३९९) इसका उपचार–प्रयोग मितव्ययी और तन–मन पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता। कुटी–छनी कुंकुम के समान मृदु माटी में आनुपातिक शीतल जल मिलाकर, सेठ की मूर्च्छा दूर करने के निमित्त एक टोप–सा बनाकर, उनके सिर पर रखा गया। जिस प्रकार शीतल जल से भरे पात्र में गर्म शलाका डुबोने से जल का वाष्पीकरण हो जाता है, उसी प्रकार माटी के टोप को सेठ के सिर पर रखने से मस्तिष्क की गर्मी का क्रमशः शमन होता जाता है और सेठ के ओंठों पर मधुर मुस्कान थिरकने लगती है। वह सोल्लास ओंकार के उच्चारण का प्रयास करने लगता है। यह ओंकार ध्वनि–योग–विद्या वर्णातीत और अगम्य है, सिर्फ यतियों–योगियों द्वारा ही बोधगम्य है। यह ऊर्ध्वमुखी एवं शब्दातीत है, किन्तु निर्विकार

बालक तक इसका उच्चारण कर सकता है। जब यह ध्वनि (वाणी) पुरुष के अभिप्राय के अनुसार ध्वनित होती है तो पाप-पुण्य का निमित्त बनती है, जिस प्रकार-

सत्पुरुषों से मिलने वाला,
वचन-व्यापार का प्रयोजन,
परहित-सम्पादन है
और
पापी-पातकों से मिलाने वाला,
वचन-व्यापार का प्रयोजन,
परहित-पलायन-पीड़ा है।

इसी प्रकार साधु (सज्जन) स्वादु (विषय-भोगी, दुर्जन) के मुख से निकली वाणी भले ही देखने-सुनने में सादृश्य हो, किन्तु शब्द और अर्थ-भेद की दृष्टि से भिन्न-भिन्न होती है-यथा-

सज्जन मुख से निकली वाणी,
"वै" यानी निश्चय से,
"खरी" यानी सच्ची है,
सुख-सम्पदा की सम्पादिका।

* * * * *

दुर्जन-मुख से निकली वाणी,
"वै" यानी निश्चय से,
"खली" यानी धूर्ता-पापिनी है,
सारहीना विपदा-प्रदायिनी। *(पृष्ठ ४०३)*

इसी प्रकार; मेघ से निकली जल-धारा ईख का संसर्ग पाकर मीठी और नीम का निमित्त पाकर कड़वी हो जाती है, जब कि-मूल में एक-सी है। "वैखली" और "वैखरी" के परिमार्जित एवं प्रचलित रूप का अर्थ-भेद पुनश्च दृष्टव्य है-

"ख" का अर्थ होता है/ शून्य अभाव। इसलिए-
"ख" को छोड़कर/ शेष बचे दो अक्षरों को मिलाने पर,
शब्द बनता है, वैरी / दुर्जनों की वाणी वह,
स्व और पर के लिए/ वैरी का ही काम करती है।

माटी के उपचार से सेठ को स्वस्थानुभूति होती है और वह सहज भाव से ओंकार का उच्चारण करते हुये, आत्म-रूप निरजन की स्तुति करता है। साथ ही, चिकित्सकों के परिचय के साथ, परिवार से चर्चा करते हुए अपनी वेदनानुभूति को अभिव्यक्त करता है किन्तु जलन के कारण नेत्रोन्मीलन में अभी कठिनाई होती है। उसे रत्नाभा की किरण भी अग्नि की चिनगारी के समान दाहक-अनुभूत होती है। सेठ के अधखुले नेत्रों को देखकर, कुम्भ पुनः परामर्श देता है कि हृदय-स्थल को छोड़कर सम्पूर्ण शरीरागों में माटी का लेप किया जाय। इससे अनेकानेक रोगों-घाव, चोट, कर्ण-पीड़ा, नासूर, सिर-शूल, अस्थि-टूटन आदि-का उपचार सम्भव है। माटी की महिमा अतुलनीय है। इसका मूल्यांकन द्रव्य (धन) से नहीं, इसके भाव, गुण-धर्म से ही किया जा सकता है।

माटी के उपचार से प्रभावित चिकित्सकगण सेठ के लिए पथ्य का निदान करते हैं कि माटी के कुम्भ में पकाया हुआ शीतल दूध, तथा कुम्भ में ही जमाये हुये दही को बिलोड़कर, मक्खन निकाल कर मट्ठा (मही) पिलाया जाये। मही के साथ ही कर्नाटकी रवादार दलिया दोपहर में खिलाया जाये और सन्ध्या-काल भोजन नहीं दिया, क्योंकि-

सन्धि-काल में सूर्य तत्त्व का/ अवसान देखा जाता है,
और, सुषुम्ना यानी /उभय तत्त्व का उदय होता है,
जो/ ध्यान-साधना का /उपयुक्त समय माना गया है,

योग के काल में भोग का होना/ रोग का कारण है,
और भोग के काल में रोग का होना / शोक का कारण है। (पृष्ठ ४०७)

इस प्रकार; नियमित उपचार के फलस्वरूप कुछ ही दिनों में सेठ पूर्ण रूप से स्वस्थ हो जाते हैं–इच्छानुरूप। औषधि सस्ती हो या मँहगी, उसका मूल्य तो रोग की शान्ति ही है, किन्तु धनवानों का विश्वास मँहगे इलाज पर ही टिका है। यद्यपि सेठ जी इसके अपवाद हैं। सेठ ने चिकित्सकों को ९ अंक प्रभाववाली विपुल राशि सहित सत्कारपूर्वक विदा किया कि "यह अहिसा–परक चिकित्सा–पद्धति सर्वदा जीवित रहे"। चिकित्सक दल ने प्रस्थान करते हुए कहा–

यह सब चमत्कार
माटी के कुम्भ का ही है,
उसी का सहकार भी
हम तो थे निमित मात्र उपचारक। (पृष्ठ ४०९)

इस घटना–क्रम ने पुन: स्वर्ण–कलश को मान–हानि की अनुभूति से अभिभूत कर दिया और वह आत्म–ग्लानि से ओत–प्रोत हो कहता है–कितनी विचित्र स्थिति है, विपत्तियों को पावन समझ कर, सम्मानपूर्वक उच्चासन पर विराजमान किया जा रहा है, और पाप को खण्डित करने वालों को पापी–छली–पाखण्डी ठहराया जा रहा है। यह सब काल–दोष का प्रभाव है, जो अंधकार पूर्ण भविष्य की ओर अग्रसर हो रहा है–

मौलिक वस्तुओं के उपभोग से,
विमुख हो रहा है ससार,
और

* * * * *

लौकिक वस्तुओं के उपभोग में,
प्रमुख हो रहा है, धिक्कार। (पृष्ठ ४११)

आज मणि, माणिक्य, नीलम, पन्ना, मुक्ता, पुखराज, स्फटिक आदि जो असाध्य रोगों के शमन और ग्रह–नक्षत्रो के प्रतिकूल प्रभाव को रोकने में सक्षम हैं– के स्थान पर कॉच–कचरे को ही सम्मान मिल रहा है। सोना, चाँदी, ताँबा, काँसा, पीतल आदि धातुओं के बने घरेलू उपयोग के बर्तनों का विक्रय कर, उनके स्थान पर स्टील का बाजार गर्म है। यह कैसी विडम्बना है–

आज बाजार में आदर के साथ,
बात–बात पर इस्पात पर ही
सबका दृष्टिपात है।
जेल में भी,
अपराधी के हाथ–पैरों में इस्पात की ही
हथकड़ियाँ और बेडियाँ होती हैं।
युवा–युवतियों के हाथों में भी
इस्पात के ही कड़े मिलते हैं।
क्या यही विज्ञान है ?
क्या यही विकास है ?
बस,
सोना सो गया अब
लोहा से लोहा लो.. हा.. । (पृष्ठ ४१२–१३)

स्वर्ण–कलश कहता है–इस कलि–काल की महिमा विचित्र है। चन्द्रकान्त मणि, मलय चन्दन, घृत, कपूर, गुणकारी तैल आदि दाह–रोग–शमन के अनुपम उपचार हैं, किन्तु आज माटी–कूड़ा को महत्त्व दिया जा रहा है। इसी प्रकार भोज्य–पदार्थों के विषय में भी घट रहा है। जहाँ दूध, दही, घृत पकवान आदि बलवर्धक तथा सात्विक–शान्त भाव बढ़ाने वाले भोज्य हैं,

वहीं रुखा-सूखा ज्वार का दलिया छाँछ के साथ खाना निर्धनता को आमन्त्रित करना है। यही कुछ सेठ के साथ घट रहा है। स्वर्ण-कलश सम्बोधित करता हुआ कहता है-

धन का मित व्यय करो,
अति व्यय नहीं
अपव्यय हो तो कभी नहीं,
भूलकर स्वप्न में भी नहीं। (पृष्ठ ४१४)

* * * * *

यथार्थ दृष्टि से सत्य तो यह है कि-
क्या हमारे पुरुषार्थ से
वस्तु-तत्त्व में परिवर्तन आ सकता है ?
नहीं-नहीं, कभी नहीं।
हाँ,/ परिवर्तन का भाव आ सकता है
हमारे कलुषित मन में।
और
यही है संसार की जड़, अहंभाव।
इससे यही फलित हुआ कि
सिद्धान्त अपना नहीं हो सकता,
सिद्धान्त को अपना सकते हम। (पृष्ठ ४१५)

अन्ततः स्वर्ण-कलश ने क्रोधातिरेक के कारण सेठ-परिवार, चिकित्सक-दल और कुम्भ को खूब जली-कटी सुनाई, किन्तु इसका कोई असर नहीं हुआ, क्योंकि क्षमा के समक्ष क्रोध अधिक समय तक टिक नहीं सकता जिस प्रकार सर्प का काटा हुआ व्यक्ति मर भी सकता है और बच भी कसता है, किन्तु सर्प अवश्य मूर्च्छित होता है। वही स्थिति स्वर्ण-कलश की हुई। कुम्भ ने सौम्य-शान्त भावों से स्वर्ण-कलश को सम्बोधित करते हुए, उसके यथार्थ रूप का स्मरण कराया। कुम्भ की मर्म पर चोट करने वाली व्यंग्यात्मक भाषा सुन, स्वर्ण-कलश अपनी उपेक्षा, उपहास, और अपमान-बोध से बौखला उठा। उसने प्रतिशोध की भावना से सेठ-परिवार को नेस्तनाबूद करने का षड्यन्त्र रचा और आतंकवाद को आमन्त्रित कर दिया, क्योंकि-

मान को टीस पहुँचने से ही,
आतंकवाद का अवतार होता है।
अति-पोषण और अति-शोषण का भी
यही परिणाम होता है तब
जीवन का लक्ष्य बनता है, शोध नहीं,
बदले का भाव.... प्रतिशोध।
जो कि महा अज्ञानता है,
दूरदर्शिता का अभाव,
पर के लिए नहीं,
अपने लिए भी घातक। (पृष्ठ ४१८)

स्वर्ण-कलश ने अपने सहचरों और अनुचरों से गुप्त-मन्त्रणा की और आगामी रणनीति की रूपरेखा तैयार करने लगा, किन्तु सेठ-परिवार को इस षड्यन्त्र की हवा तक नहीं लग सकी। जिस प्रकार भौंरा और मक्खी दोनों गन्ध-सेवी होने पर भी भ्रमर सौरभ को छोड़कर, मल-मूत्र-माँस आदि पर नहीं बैठता, जबकि मक्खी इन्हीं में फँस कर मर-मिट जाती है, उसी प्रकार सज्जनों की नासिका स्वप्न में भी भूलकर दुर्गन्ध का सेवन नहीं करती।

आज आधी रात में आतंकवाद का आगमन होने वाला है, किन्तु स्वर्ण-कलश अन्तर्विरोध में फँस गया। माटी की महिमा से प्रभावित स्फटिक की झारी ने असंतुष्ट गुट की भाँति

कहा–"न्याय की वेदी पर अन्याय का ताण्डव–नृत्य मत करो"। झारी की सूझ–बूझ से प्रभावित चाँदी–ताँबे आदि के अनेक छोटे–बड़े बर्तन स्वर्ण–कलश के विपक्ष में मत प्रकट करते हैं और झारी का समर्थन करते हैं। स्फटिक की झारी स्वर्ण–कलश को सद्‌बुद्धि देती हुई कहती है–

मान–यान से अब। नीचे उतर आओ तुम।
जो वर्धमान होकर मानातीत है,
उनके पदो में प्रणिपात करो,
अपार पाप–सागर से तर जाओ तुम।(पृष्ठ ४२१)

झारी के ये वचन सुनकर, स्वर्ण–कलश का पारा चढ़ जाता है। जिस प्रकार अहंकारी कामान्ध रावण को मन्दोदरी का, सीता–मुक्ति का सद्‌सुझाव आग में घी डालने के समान प्रमाणित हुआ था, उसी प्रकार झारी के इस सुझाव से स्वर्ण–कलश आग–बबूला हो गया। स्वर्ण–कलश झारी को भी चेतावनी देता हुआ कहता है कि तुम्हें भी छोड़ा नही जायेगा।

अनर्थ घटने की सम्भावना से क्षुब्ध झारी ने माटी के कुम्भ को संकेत दिया कि सेठ–परिवार को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया जाय। पथ–प्रदर्शक कुम्भ के साथ सेठ–परिवार भवन के पिछले दरवाजे से पलायन कर जाता है।

भयभीत सेठ–परिवार ग्राम–नगरो को पार करता हुआ, पर्वत–श्रेणियों से युक्त सघन वन में प्रविष्ट हो जाता है। गगन–चुम्बी, हरीतिमा से आच्छादित पर्वत–श्रेणी, पत्र–पुष्प–फलादि से लदे पेड–पौधे, लता–गुल्म पथिकों का श्रम परिहार करते हैं। पसीने से लथ–पथ,, थका–माटा भग्नहृदय सेठ–परिवार शीतल पवन के झोकों का स्पर्श पाकर, विश्रान्ति हेतु प्रशान्त वनस्थली मे बैठ जाता है। अचानक वंश–समूह अपनी मगलकारक युगीन परम्परानुसार कुम्भ के श्रीचरणों में वंश–मुक्ता की वर्षा करता है।

इसी बीच, सिह मे सताया हुआ, अभय की खोज में, हाथियों का एक भयभीत झुण्ड अकस्मात् इधर आता हुआ दिखाई देता है। सेठ परिवार के स्नेहिल आश्रय में, गज समूह अपूर्व शान्ति का अनुभव करता हुआ, कुम्भ के सम्मुख बहुमूल्य मुक्ता–राशि (गज–मोती) चढ़ाता है। वंश–मुक्ता और गज–मुक्ता की अपरिमित–आभा, परस्पर विलीन होती हुई, अगणित गुनी चमकायमान हो जाती है और चतुर्दिक् आभा ही आभा का साम्राज्य नजर आने लगता है।

गन्तव्य अभी दूर है, इसलिए सेठ–परिवार चलने का उपक्रम करता ही है कि पीछे से गरजती हुई आवाज आती है– अरे पापियो ! ठहरो! कहाँ भागे जा रहे हो, कब तक भागोगे ? परिवार ने जब मुडकर पीछे देखा तो आतकवाद का दल नजर आया। क्रूर, विकराल आतकवाद को देख, आर्य–संस्कृति के संरक्षण हेतु गज–समूह ने सेठ–परिवार को अपने घेरे में सुरक्षित कर, अपनी–चिघाड से सम्पूर्ण आकाश को गुँजा दिया, जिससे धरती का धीरज टूट गया। पर्वतो का साहस (श्रम) खो गया। भयभीत पक्षी–समूह दिशा भूल गया। अजगरों की गहरी नींद टूट गई। मृग–गण मार्ग भूलकर सिह के सम्मुख जा खड़े हुए। बडी–बड़ी बामियाँ धूल बनकर, धरती पर बिखर गईं। उनमे से निकले विकराल–कराल नाग फूत्कार करने लगे।

जब नाग–समूह को ज्ञात हुआ कि निर्दोष सेठ–परिवार अपने इष्ट के स्मरण में लीन है और शिष्टो के सरक्षण हेतु गज–समूह का क्रुद्ध होना समुचित और स्वाभाविक है तो प्रधान नागराज ने स्वजाति को आदेश दिया कि किसी को काटना नहीं, प्राणान्त करना नहीं। मात्र उद्दण्डता को दूर करने के लिए दण्ड–संहिता होती है। यद्यपि –

प्राण–दण्ड से। औरों को तो शिक्षा मिलती है,
परन्तु। जिसे दण्ड दिया जा रहा है,
उसकी उन्नति का अवसर ही समाप्त।
दण्ड–संहिता इसको माने या न माने
क्रूर अपराधी को,
क्रूरता से दण्डित करना भी

एक अपराध है, न्याय-मार्ग से स्खलित होना है। (पृ. ४३१)

आतंवाद चारों ओर से घिर जाता है। एक ओर अगणित नाग-नागिन हैं, जिससे आतंवाद स्वयं आतंकित हो उठता है। वह स्वयं सघन वन में पलायन कर जाता है। इस प्रसंग पर आचार्यश्री की निम्नांकित पंक्तियाँ प्रेरणा देती हुई कहती हैं –

संहार की बात मत करो,
संघर्ष करते जाओ।
हार की बात मत करो।
उत्कर्ष करते जाओ। (पृ. ४३२)

इसी बीच एक नाग-नागिन युगल कहता है –

हमें नाग ना गिनो। युगों-युगों का प्रमाण है कि हमने अकारण किसी को भी नहीं डसा, इसलिए सन्त हमें उरग कहते हैं, अर्थात् –

उर से सरकते-सरकते
उन तक पहुंच कर
उन्हें उर से चिपकाया है,
प्रेम से उन्हें पुचकारा है,
उनके घावों को सहलाया है,

* * * * *

काँटों को भी नहीं काटा हमने।

* * * * *

साथ ही एक बात और हमें कहना –
पद वाले ही पदोपलब्धि हेतु
पर को पद-दलित कहते हैं।
पाप-पाखण्ड करते हैं।

* * * * *

जितने भी पद हैं,
वह विपदाओं के आस्पद हैं,
पद-लिप्सा का विषधर वह
भविष्य में भी हमें न सूँघे,
बस यही कामना है, विभो। (पृ. ४३३-३४)

नाग-युगल का यह उद्‌बोधन सुन, सेठ-परिवार और हाथी-समूह स्तंभित रह जाते हैं कि पुनः नाग-युगल कहता है –

मुझे क्षमा करें। ऐसी बात नहीं है कि सभी पद वाले ऐसे ही होते हैं।

उनमें कुछ ऐसे भी पद हैं, जिनकी पूजा करने के लिए युगों-युगों से यह जीवन तरस रहा है। वह धन्य घड़ी आज आई है। उन पदों में शत-शत नमन के साथ अगणित नाग-मणियाँ अर्पित हुई और सर्प-समाज धन्य हुआ।

झाड़ियों में छिपा हुआ आतंकवाद, इस सातिशय घटना को निन्दा से देख रहा था। एक बार फिर भयभीत होकर, सबलों के समक्ष निर्बलों की सी अनुभूति करता है। इसी बीच उसके द्वारा सात नीबू मंत्रित कर आकाश में उछाले जाते हैं। मंत्र-साधना का तत्काल प्रभाव नजर आता है कि धनघोर घटायें आकाश में छाने लगती हैं। सम्पूर्ण वसुधा अंधकार में डूबने लगती है। प्रलयंकारी झंझावात का प्रकोप जिससे पर्वत हिल उठते हैं, पेड़ों की जड़ें हिल जाती हैं, वे धरती का आँचल थामने लगे। बादलों की गरज और बिजली की चमक ने "मयूर-समूह" के "कूक को मूक" कर दिया है। मूसलाधार वर्षा से धरती जल-मग्न हो गई है। चारों ओर जल ही जल का साम्राज्य

नजर आता है। बादलों की घुमड़न, बिजली की उमड़न, ओला-वृष्टि और शीत लहर ने कहर ढा दिया, किन्तु इस प्रलयंकारी स्थिति में भी गज-समूह ने सेठ-परिवार का अविकल परिरक्षण किया और स्थिति इस प्रकार सामान्य (पूर्ववत्) हो गई। यथा -

बादल दल छँट गये हैं
काजल-पल कट गये हैं
वरना लाली क्यों फूटी है
सुदूर ---प्राची में। (पृ. ४४०)

सेठ-परिवार सकुशल नदी के किनारे पहुँच जाता है। अतिवृष्टि के कारण नदी में बाढ़ आ गई है। अपार जलराशि और तीव्र वेग को देखकर, सेठ-परिवार का मन आकुल-व्याकुल होता है। उनका धैर्य और साहस छूट जाता है। भीरुता के कारण उनका मन लौटने का सा होने लगता है और वे लौटने का उपक्रम करने लगते हैं तब माटी का कुम्भ सम्बोधित करता हुआ कहता है-

नहीं-नहीं-नहीं / अभी लौटना नहीं।
अभी नहीं -- कभी भी नहीं,
क्योंकि अभी / आतंकवाद गया नहीं,
उससे संघर्ष करना है अभी
वह कृत-संकल्प है/अपने ध्रुव पर दृढ।
जब तक जीवित है आतंकवाद
शान्ति का श्वास ले नहीं सकती / धरती यह,
ये आँखे अब/ आतंकवाद को देख नहीं सकतीं
ये कान अब/आतंक का नाम सुन नहीं सकते,
यह जीवन भी कृत-संकल्पित है कि
उसका रहे या इसका
यहाँ अस्तित्व एक का रहेगा। (पृ. ४४१)

अब शीघ्रता करो। नदी पार करना है। रस्सी का एक छोर मेरे गले में बांधकर, कुछ-कुछ छोडकर क्रमशः सभी अपनी-अपनी कमर मे कसकर, ओंकार का जाप करते हुए, जल-धारा में कूद पडे। परिवार का मन सकोच से उद्विग्न है। इसलिए पुनः कुम्भ कहता है -

बंधन रुचता किसे
मुझे भी प्रिय है स्वतन्त्रता
* * * * *
बाँधना भी तो बंधन है।
* * * * *
बचाना चाहता हूँ औरों को। (पृ. ४४२-४४३)

कुम्भ के ये वचन सेठ पर असर कर गये। कुम्भ के संकेतानुसार सेठ-परिवार नदी में कूद पड़ता है, निराधार एक मात्र कुम्भ का आधार। जल में डूबे, मात्र सिर दिख रहे हैं। जल की शीतलता से, रक्त की गति मंद पड़ती जा रही है। हाथ-पैर निष्क्रिय हो रहे हैं। जलीय जीव अपना भोज्य समझ, आस-पास अपनी क्रीडा कर रहे हैं, किन्तु परिवार की शान्त मुद्रा देख, उनका हृदय-परिवर्तन हो जाता है, जैसे -

"भगवान् को देखते ही भक्त के मन में, भजन का भाव फूट जाता है। जैसे ही जल-जीवों में कर्त्तव्य और विवेक की जागृति होती है, वैसे ही जल में जड़ता बढ़ती है। नदी क्रूर हो उफनने लगती है। जड़ और जंगम की विशेषताएँ अलग-अलग होती हैं, यथा -

जंगम को प्रकाश मिलते ही,
यथोचित गति मिलते ही

विकास ही कर जाता है वह,
जबकि,
जड़ ज्यों का त्यों रह जाता है वह
जड़ जब कि अज्ञानी होता है,
एकान्ती हठी होता है। (पृ. ४४५)

जड़–नदी की धारा वेगवती है, अपने आश्रित जीवों की प्रतिकूलता को कोसती हुई, तीव्र तरंगाघात से सेठ–परिवार के कोमल–कपोलों को आघात पहुँचाती है। वह परिवार को धूर्तों, पातकों, पाखण्ड–प्रमुखों आदि अपशब्दों से सम्बोधित करती हुई कहती है –

पर को और पर धन को,
अपने अधीन किया है तुमने,
ग्रहण–संग्रहण रूप,
संग्रहणी–रोग से ग्रसित हो तुम।
इसीलिए क्षण भर भी
कहीं रुकती नहीं मैं। (पृ. ४४७)

आत्म–प्रशंसा में डूबी जड़ आशय–वाली नदी की बातें सुनकर, सेठ ने शान्तिपूर्वक कहा–

यदि तुम्हें/ धरा का आधार नहीं मिलता
तुम्हारी गति कौन–सी होती !
पाताल को भी पार कर जाती तुम !
धरती ने तुम्हें स्वीकारा
छाती से चिपकाया है तुम्हें। (पृ. ४४९)

सेठ के सदाशय–पूर्ण सम्बोधन का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। नदी अति वेगवती हो, भँवरदार गति से बहने लगती है और सेठ–परिवार का अन्त कर देने पर तुल जाती है। इस कारण अनेकानेक जीव–जन्तु, हिसक–अहिसक, पशु–पक्षी असमय में ही काल के गाल में जा फँसते हैं। तीव्र बहाव में, अचानक एक विशाल काय हाथी बहता हुआ आ रहा है, जिसकी पीठ पर एक भयभीत प्रौढ़ सिंह बैठा हुआ है। ज्यों ही भँवर के पास आता है, भँवर में फँसकर एक दो चक्कर खाकर, भँवर में ही विलीन हो जाता है। इस भँवर में चाहे निर्बल हो या बलवान्, किसी का बल काम नहीं आता। सभी का बल बलिदान हो जाता है यहाँ।

इस घटना को घटता देखकर कुम्भ ने विचार किया कि कहीं सेठ–परिवार का धैर्य–साहस न टूट जाये और वह अपने अटल विश्वास से डिग न जाये, इसलिए उसने (कुम्भ ने) नदी को ललकारा –

अरी पाप–पाँव वाली, सुन !
यह परिवार तो पार पर है,
मझधार में नहीं,
जिसने धरती की शरण ली है
धरती पार उतारती है उसे
यह धरती का नियम है .. व्रत ! (पृ. ४५२)

* * * * *

"धरती" शब्द का भावार्थ है –

जो तीर को धारण करती है,
या शरणागत को
तीर पर धरती है,
वह धरती कहलाती है। (पृ. ४५३)

इसलिये अरी पापिनी नदी !फिर भला तुम कैसे डुबो सकती हो ? जब आग की नदी को प्यार से पारकर आये हैं तो हमें डुबोने की क्षमता तुममें कहाँ ? हम धरती के अंश हैं। हममें "गागर में सागर" भरने की क्षमता है। हमारा आशय जल-धारण ही तो है।

कुम्भ की कृतज्ञता से प्रभावित हो, एक महामत्स्य ने कुम्भ के चरणों में बहुमूल्य मुक्ता-मणि अर्पित करते हुए कहा-"यह तुच्छ सेवा स्वीकृत हो स्वामिन्"। इस मुक्ता-मणि की विशेषता है कि इसे पाने वाला व्यक्ति अगाध-जल-राशि में भी अबाध-पथ पा जाता है और यही हुआ भी तत्काल।

अनायास सेठ-परिवार भँवरदार धारा को भी पार करता हुआ, मन्द-मन्द मुस्कान बिखेरने लगता है। यह सेठ की त्याग-तपस्या का सुफल है। कुम्भ के आत्म-विश्वास और साहसपूर्ण जीवन से नदी भी प्रेरित हो,आत्म-समर्पण के भाव से भर उठती है और विनीत स्वर में कहती है-"उद्दण्डता के लिए क्षमा चाहती हूँ।

सेठ-परिवार की आधी यात्रा पूर्ण हो गयी है। उसे ऐसा महसूस होता है, जैसे गन्तव्य (तट) ही-उसकी ओर आ रहा है। जिस प्रकार परिश्रमी, विनयशील, प्रतिभावान् छात्र सर्वोच्च अंक प्राप्त कर आनन्दानुभूति करता है, उसी प्रकार की अनुभूति से कुम्भ का मुख भी खिल उठता है।

उसी दल-वल, छल-छद्म, और हाव-भाव के साथ पुनः आतंकवाद का आगमन होता है। वह नदी से प्रार्थना करता है कि हे जलदेवता ! क्या तुम अपराधियों को भी पार उतारते हो ? पुण्यात्मा का पालन-पोषण तो सर्वथा उचित है, कर्त्तव्य है, क्या पापियों से भी प्यार करते हो ? यदि नही तो कुम्भ का सहारा लेकर चलने वालों को डुबो दो। ये धरती के प्रशंसक, पापी, पुण्य से दूर, धन-वैभव, विषय-सम्पदाओं के मालिक हैं। इन्हें सहयोग देकर इतिहास को कलंकित न करो। तुम्हारा इतिहास गौरवशाली है। तुमने अग्निदेवता को भी कीलित कर, पाताल में शरण लेने के लिए बाध्य किया है। फिर, आज तुममें ऐसा परिवर्तन क्यों और कैसे ? इतना सब सुनकर नदी कह उठती है -

जिन्हें डुबोने के लिए कहते हो,
उनके अभाव में यहाँ/ अभाव के सिवा, बस
शेष कुछ भी नहीं मिलेगा।
तरवार के अभाव में,
म्यान का मूल्य ही क्या ?
भोक्ता के अभाव में,
भोग-सामग्री से क्या ?
जो कुछ है धरती की शोभा,
इन से ही है,
और इन जैसे सेवा-कार्य-रतों से। (पृ. ४५८)

जिस प्रकार नीव के अभाव में शिखर का, धूल-मिट्टी के अभाव में फूल की क्या गति होगी, कहने की आवश्यकता नहीं है। स्वतः सिद्ध है। अब हम अपनी शक्ति का दुरुपयोग नहीं करेंगे। मन में समर्पण, उदारता और उपासना का जागरण हो चुका है और नदी मौन-धारण कर लेती है।

सरिता की मौन-गम्भीरता आतकवाद के धैर्य-साहस को हतोत्साहित न कर सकी। वह आत्म-बोधित-हुआ कहता है -

यह सही नीति है कि
रणांगन में कूदने के बाद
मित्र-बल की स्मृति नहीं होती,
शत्रु बल पर प्रत्युत, / टूट पड़ना ही होता है।
पराश्रय लेना दीनता का प्रतीक है,

वीर-रस को क्षति पहुँचती है, इससे,
इतना ही नहीं मित्रों से मिली मदद,
यथार्थ में मद-द होती है
जो विजय के पथ में बाधक,
अंधकार का कार्य करती है। (पृ. ४५९-६०)

आतंकवाद अपनी सफलता की मृगमरीचिका में गतिशील हो, सेठ-परिवार के समक्ष मार्ग-अवरोधक बन, कड़क कर कहता है -

"अब पार का विकल्प त्याग दो
त्याग-पत्र दो जीवन को
पाताल का परिचय पाना है तुम्हें
पाखण्ड-पाप का सही परिपाक होता है।" (पृ. ४६०)

आतंकवाद सेठ-परिवार पर भीषण पथराव करता हुआ कहता है -

स्वागत मेरा हो
मनमोहक विलासतायें
मुझे मिलें अच्छी वस्तुएँ-
ऐसी तामसता भरी धारणा है तुम्हारी,
फिर भला बता दो हमें,
आस्था कहाँ है तुम्हारी ?
सबसे आगे मैं
समाज बाद में !

* * * * *

समाजवाद का अर्थ होता है-समूह
और/ समूह यानी
सम-समीचीन ऊह-विचार है
जो सदाचार की नींव है।
प्रचार-प्रसार से दूर
प्रशस्त आचार-विचार वालों का
जीवन ही समाजवाद है।
समाजवाद, समाजवाद चिल्लाने मात्र से,
समाजवादी नहीं बनोगे। (पृ. ४६०-६१)

आतंकवाद के इस प्रकार कटुक-कठोर अपशब्दों को सुनकर सेठ-परिवार की क्रोधाग्नि भभक उठती है। मान-तिलमिलाने लगता है। धमनियों में खून खौलने लगता है। पथराव की गम्भीर चोटों से रक्त की धारा बहने लगती है, जिससे जल-धारा भी रक्तिम हो चली। जल-धारा भी आतंकवाद पर रुष्ट हो जाती है। केवल शान्त है तो सेठ; क्योंकि -

आचरण के सामने आते ही
प्रायः चरण थम जाते हैं/ और
आवरण के सामने आते ही
प्रायः नयन नम जाते हैं। (पृ. ४६२)

मोह के वशीभूत हो विषयी-भोगी मनुष्य कभी रस्सी को साँप; तो कभी साँप को रस्सी समझकर विषयों में लीन रहता है। मोह का अन्त तब-तक सम्भव नहीं है, जब-तक अपने स्वभाव (स्वरूप) की अनभिज्ञता बनी रहेगी। आतंकवादजन्य विषम परिस्थितियों से सेठ साहस, धैर्य पूर्वक संघर्ष कर रहा है, कुम्भ के संरक्षण हेतु दुस्सह कर्म-फल को सहन कर रहा है।

सात-आठ हाथ की दूरी से ही आतंकवाद का निर्दयतापूर्वक उपसर्ग चल रहा है, किन्तु

तपःपूत कुम्भ को फोड़ने में सफल नहीं हो पा रहा है, जिसके बल पर सेठ–परिवार का परिरक्षण हुआ है। आतंकवाद कमर में कसी रस्सी को काटने का बार–बार प्रयास करता है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो जल–देवता ने परिवार के चारों ओर सातिशय रक्षा– मण्डल की रचना की हो या मत्स्य–मुक्ता की ही प्रभावना हो। अब आतंकवाद पराजय का मुख ताकने लगता है और उसे प्रतिपक्ष की सदाशयता की प्रतीति होने लगती है।

फलस्वरूप, तन से ईर्ष्यालु, मन से क्रुद्ध और वचन से निर्बल, घुटने टेकने की स्थिति में हो, आतंकवाद हारी होड़ के दुस्साहस मे लीन है। अभी उसकी वचन–शक्ति का पूर्ण रूप से अन्त नहीं हुआ है। वह पूर्वानुसार अपनी पुरानी बलवती टेक पर है। आतंकवाद पूरी–शक्ति से, सेठ–परिवार को फाँसने के लिए जाल फेकता है, जिसमें बड़ी–बड़ी मछलियों तक को अचानक फँसाने की अपूर्व क्षमता है, किन्तु धरती के उपासक पवन–देवता से यह कुकृत्य देखा नहीं गया। उसने चक्रवात (प्रभंजन,आँधी) का प्रलयंकारी रूप धारण कर, एक ही झटके में जाल उड़ाकर, सुदूर आकाश में फेक दिया। पवन के इस झटके (झोंके) के कारण आतंकवाद का दल अपनी नाव में ही, सिर के बल गिर, चक्कर खाकर, मूर्च्छित–सा हो गया है। उसके प्राण–पखेरू उड़ने से लगे हैं। नाव डूबने की–सी है और जीवन–नैया भी डूबती–सी प्रतीत होने लगती है।

चक्रवात जब अपने उत्कर्ष की ओर ही बढता जाता है तो कुम्भ का संकेत पा, संयत हो जाता है। आतकवाद की नाव भी सेठ–परिवार की तीन परिक्रमा करती हुई पूर्वस्थिति में आ जाती है। जिस प्रकार जल सिचन से लक्ष्मण की मूर्च्छा टूटी थी, उसी प्रकार सरिता के शीतल जल–बिन्दुओ के स्पर्श से आतकवाद की मूर्च्छा टूट जाती है, किन्तु स्वस्थ–सावधान होते ही आतंकवाद पुनः उबलता हुआ कहता है – पकड़ो ! पकडो ! पकड़ो ! अरे बहरो ! मरो या हमारा समर्थन करो! अरे पापियो ! सुनो ! सुनो ! –

अब धन–संग्रह नहीं,
जन–संग्रह करो,
और
लोभ के वशीभूत हो
अंधाधुंध सकलित का
समुचित वितरण करो,
अन्यथा
धनहीनो मे/ चोरी के भाव जागते है, जागे है।

* * * * *

चोर इतने पापी नही होते,
जितने कि/ चोरों को पैदा करने वाले। (पृ. ४६७–६८)

तुम स्वत चोर, चोरों के प्राश्रय और जनक हो। सज्जन अपने दुर्गुणों को छिपाते नहीं। उनके मन में छिपाने तक का भाव नही आता, अपितु अपने दोषों का उद्‌घाटन करते हैं। दूसरों के दोषों को ढूँढने से पहले अपनी ओर झाँकना चाहिये।

इस प्रकार आतकवाद की दुर्दमनीय धमकियो से सेठ के अलावा शेष परिवार का दिल दहल उठता है। उनका सकल्प डिगने लगता है। अकाल में काल के गाल में फँसे समझ, मन में आत्म–समर्पण के भाव उठने लगते है। इसी बीच नदी ने उद्‌बोधित करते हुए कहा – "उतावली मत करो। सत्य का आत्म–समर्पण और वह भी असत्य के सामने। हे भगवन् ! यह कैसा काल आ गया ? क्या असत्य शासक बनेगा अब ? क्या सत्य शासित होगा ? नहीं ––नहीं कभी नहीं।

क्षुब्ध नदी कोपवती हो, विकराल रूप धारण कर आतंकवाद की नाव को ऐसा नाच–नचाती है कि नाव डूबने को होती है। तत्क्षण आतंकवाद मंत्र–जाप करता है कि देवगण अवतरित हो जाते हैं और कहने लगते हैं कि – "स्मरण का कारण ज्ञात हो स्वामिन्"!

आदेश की प्रतीक्षा में नत देवगण, कुछ क्षणों के बाद कहते हैं कि –

विद्याबलों की अपनी/ सीमा होती है, स्वामिन् !
उसी सीमा में कार्य करना पड़ता है/ हमें।
प्रासंगिक कार्य करने में,
पूर्णत· हम अक्षम हैं
एतदर्थ क्षमाप्रार्थी हैं। (पृ. ४७१)

हे स्वामिन्! आपने इस बल के समक्ष अपने बल को आजमाया ही होगा। हमें तो अनुभूत हो रहा है कि हम सिंह–बल के समक्ष मृग–शावक के समान खड़े हैं। ऐसी स्थिति में संघर्ष का प्रश्न ही नहीं उठता। अतएव –

परिवार की शरण में जाना ही
पतवार को पाना है
और
अपार का पार पाना है। (पृ. ४७२)

इसके बावजूद भी यदि प्रतिकार का भाव मन में हो तो सुनो – अब किसी प्रकार का कार्य–कलाप पराजय का सुनिश्चित संकेत है। जिस प्रकार जल की अपेक्षा अग्नि को बाँधना, आग की अपेक्षा वायु को बाँधना –दुष्कर कार्य है, उसी प्रकार असीम नीले आकाश को बाँधना असम्भव है। जिस प्रकार जल और घी एकमेव नहीं हो सकते, उसी प्रकार अमृत पर विष, भौंरों पर काली स्याही का कोई असर नहीं पड़ सकता है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण – दृष्टात–आतंकवाद के गले नहीं उतर सके। उतरे भी तो क्रियान्वित नहीं हो सके, क्योंकि कषाय के वेग को संयत होने में समय तो लगता ही है।

समय के अन्तराल से जो कुछ होना होता है, वह तो होता ही है। देवगणो की भविष्यवाणी फलित होती है। अचानक नाव की करधनी डूब जाती है, जिसपर लिखा हुआ था –

आतंकवाद की जय हो
समाजवाद का लय हो
भेद–भाव का अन्त हो
वेद–भाव जयवन्त हो।

इस घटना से आतकवाद के होश उड़ गये। आत्म–विश्वास टूट गया। पश्चात्ताप के घूँट पीता हुआ, व्याकुल हो, अवरुद्ध कण्ठ से कहता है–

कोई शरण नहीं है/ कोई तरणि नहीं है,
तुम्हारे बिना हमें यहाँ/ क्षमा करो, क्षमा करो।
क्षमा के हे अवतार/ हम से बड़ी भूल हुई,
पुनरावृत्ति नहीं होगी / हम पर विश्वास हो। (पृ. ४७४)

हम संकटो–ककटों मे फँसे हैं। अब हमें बचा लो। हम अपराधी हैं। अब सदबुद्धि चाहते हैं। आप पथ–प्रदर्शक हैं। अविलम्ब बचाओ। जिसप्रकार –

संतान की प्रकृति शैतानी होती है,
फिर भी संतान पर/ माँ की कृपा होती ही है,
सन्तान हो या सन्तानेतर,
यातना देना, सताना,
माँ की सत्ता को स्वीकार कब था? (पृ. ४७५)

आतंकवाद की परिवर्तित परिणति देखकर सेठ–कहता है– अधिक दीन–हीन मत बनो भाई। जिस प्रकार हरीतिमा, पत्र–पुष्प–फलादि से आच्छादित पेड़, पथिक की संतुष्टि के लिए इन्तजार नहीं करता, अनुनय–विनय से आमन्त्रित अतिथि को षड्रस–युक्त–छप्पन–व्यंजन का भोजन कराकर, जल–पान कराने में कृपणता नहीं की जाती है, उसी प्रकार माँ

अपनी संतान की कभी अमंगल कामना नहीं करती है। यदा–कदा सकारण माँ की आँखों में रोष आ सकता है, आता है, आना ही चाहिये, किन्तु –

माँ की उदारता–परोपकारिता
अपने वक्ष–स्थल पर,
युगों–युगों–––चिर से
दुग्ध से भरे,
दो कलश ले खड़ी है।
क्षुधा–तृषा–पीड़ित,
शिशुओं का पालन करती रहती है।
और
भयभीतों को, सुख से रीतो को
गुपचुप हृदय से
चिपका लेती है, पुचकारती हुई। (पृ. ४७६)

यह है, माँ की ममता और वात्सल्य से भरा हुआ हृदय। जब तुमने माँ को माँ स्वीकार ही लिया है तो अब उसकी परीक्षा मत करो। अब अपराधी नहीं, अपरा 'धी' बनो। पराधी नहीं, पराधीन नहीं, किन्तु अपराधीन बनो। सेठ के मृदु वचन सुनकर, आतंकदल निःसंकोच–निःशंक–डगमगाती नाव से जलधार मे कूद पड़ता है। तत्क्षण ममता की मूर्ति माँ के समान सेठ–परिवार आतंकवाद को ससम्मान सहारा देकर नया जीवन प्रदान करता है।

नाव जलमग्न हो जाती है, जिससे आतंकवाद का अन्त और अनन्तवाद का श्रीगणेश होता नजर आता है।

सर्वप्रथम मान–दम्भ से रहित कुम्भ, पश्चात् दो पंक्तियों में नौ–नौ व्यक्ति परस्पर आश्रित, एक माँ की सन्तान–सी–आगे बढ़ रही है और कुम्भ के मुख से मंगलकामनाओं की वर्षा हो रही है। – यथा–

"यहाँ ... सब का सदा
जीवन बने मंगलमय
छा जावे सुख–छाँव
सबके सब टले --
अमंगल भाव,
सबकी जीवन–लता
हरित–भरित विहँसित हो
गुण के फूल विकसित हों
नाशा की आशा मिटे
आमूल महक उठे
–बस !" (पृ. ४७८)

इधर, सरिता–तट–पुलकित मन, कुम्भ के स्वागत के लिए आकुल है। उषा की लाली बिखरी हुई है। अरुणोदय की निःसृत किरणें सरिता की लाल–लहरों में अपनी स्वर्णिम आभा को उलझाती–सी प्रतीत होती हैं, मानों उषा ने गुलाबी–साड़ी पहनी है। वह इस प्रकार प्रतीत होती है, जैसे कोई स्नान करती हुई मदमस्त नारी संकोच और लज्जावश सिहर गई हो।

सम्पूर्ण वातावरण धर्मानुराग से अनुपूरित है। धर्म–प्रभावना के सौरभ से चारों दिशायें सुरभित हैं। तट--निकट आ ही गया। तट का स्वागत स्वीकार करते हुए, सर्वप्रथम कुम्भ ने प्रतिदान स्वरूप तट का चुम्बन किया। तरंगाघात से उद्भूत फेन में अरुणाभा के मिश्रण से ऐसा प्रतीत होता है, मानों तट गुलाब–पुष्पों का हार कुम्भ के अभिनन्दनार्थ कर (हाथ) में ले खड़ा हो।

समस्त जन नदी–तट पर धरती की दुर्लभ धूल का स्पर्श करते हुए सुख की साँस लेते हैं और कमरे में बँधी रस्सी को परस्पर खोलते हैं कि रस्सी बोलती है –

मुझे क्षमा करो तुम,
मेरे निमित्त तुम्हें कष्ट हुआ।
तुम्हारी/ दुबली–पतली काटि वह
छिल–छुल कर
और घटी, कटी–सी बन गई। (पृ.४८०)

रस्सी की इस समयोचित उक्ति पर, सेठ–परिवार अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कहता है –

नहीं–––नहीं
अयि विनयवति !
पर–हित–सम्पादिके !
तुम्हारी कृपा का परिणाम है यह
जो–––
हम पार कर गये
आज हमें
किसकी क्या योग्यता है
किसका कार्य–क्षेत्र
कहाँ तक है,
सही–सही ज्ञात हुआ।
केवल उपादान कारण ही
कार्य का जनक है–
यह मान्यता दोषपूर्ण लगी,
निमित्त की कृपा भी अनिवार्य है।
हाँ। हाँ !
उपादान कारण ही
कार्य–रूप में ढलता है।
यह अकाट्य नियम है।
किन्तु
उसके ढलने में
निमित्त का सहयोग भी आवश्यक है,

* * * * *

उपादान का कोई यहाँ पर
पर–मित्र है––– तो वह
निश्चय से निमित्त है
जो अपने मित्र का
निरन्तर नियमित रूप से
गन्तव्य तक साथ देता है। (पृ. ४८०–८१)

पुनश्च, सेठ–परिवार रस्सी को सादर निहारता हुआ, छने जल से कुम्भ को भरकर आगे बढ़ने का उपक्रम करता है कि आगे बढ़ते ही उसी पुराने स्थान पर पहुँच जाते हैं, जहाँ वही शिल्पी कुम्भकार माटी लेने आया है। सेठ परिवार–सहित कुम्भ कुम्भकार का अभिवादन करता है कि कुम्भ एवं कुम्भकार की यादें ताजी हो जाती हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो पवन का स्पर्श पाकर सरोवर तरंगायित हो उठा हो। शस्य–श्यामला धरती कुम्भ से कहती है – बेटा! तुम्हारी उन्नति और निरभिमान,सरल परिणति देखकर प्रसन्न हूँ। तुमने मेरी आज्ञा का पालन कर, शिल्पी के

संसर्ग में आकर सृजनशील (उत्कर्ष-पूर्ण) जीवन का प्रारम्भ प्रथम चरण को प्राप्त किया। तुमने अहंकार को त्यागकर शिल्पी के प्रति श्रद्धा-समर्पण-भाव रखा यह जीवन का दूसरा चरण है। अग्नि-परीक्षा जैसे कठोर उपसर्गों को सोत्साह एवं साहसपूर्वक सहन करना तुम्हारे उत्कर्षपूर्ण (कर्मशील) जीवन का तीसरा चरण है। क्षण-भंगुर जीवन को स्वाश्रित, ऊर्ध्वमुखी एवं ऊर्ध्वगामी बनाना सृजनशील जीवन का अन्तिम चरण है। इसी प्रकार सर्ग से निसर्ग, जन्म से अजन्मा होना सृजनशील जीवन का वर्गातीत अपवर्ग होना है।

धरती की इस उदात्त भावना को सुनकर, कुम्भ सहित सेठ-परिवार ने कृतज्ञतापूर्वक कुम्भकार की ओर देखा कि विनम्र भाव से शिल्पी ने कहा -

यह सब,
ऋषि-सन्तों की कृपा है,
उनकी ही सेवा मे रत
एक जघन्य सेवक हूँ मात्र,
और कुछ नहीं। (पृ. ४८४)

कुछ ही दूरी पर, पेड के नीचे पाषाण-शिला पर विराजमान, वीतरागी साधु की ओर सबकी दृष्टि जाती है। तत्क्षण वहाँ पहुँचकर, सभी ने विनय भाव से उनकी परिक्रमा कर, उनके पूज्य-पद-पकजों मे श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। गुरु के श्रीचरणों का अभिषेक कर, गन्धोदक (पादोदक) माथे पर लगाया और तत्पश्चात् गुरु-कृपा की प्रतीक्षा में, अपलक नेत्रों से गुरु की ओर निहारने लगे। कुछ क्षणो के उपरान्त, अभय का आशीर्वाद देते हुए, आगन्तुकों को प्रसाद बिखेरने लगे - "शाश्वत सुख का लाभ हो"।

इसी बीच जिज्ञासा वश आतकवाद ने प्रश्न किया कि हे स्वामिन् ! समग्र ससार ही, -

दु ख से भरपूर है,
यहाँ सुख है, पर वैषयिक
और वह भी क्षणिक
यह तो अनुभूत हुआ हमें
परन्तु
अक्षय सुख पर,
विश्वास नही रहा है। (पृ. ४८४-८५)

आपने अविनश्वर सुख को पाया है। यदि आप अपना अनुभव हमें बता सके तो हम भी आश्वस्त होकर, आप जैसी साधना में लीन हो, अपना जीवन सार्थक कर सकें। कृपाकर ऐसा वचन दीजिये कि - "तुम्हारी भावना पूरी हो"।

आगन्तुक दल की धारणा समझ सन्त ने मुस्कराते हुए कहा - ऐसा होना असम्भव है, क्योंकि गुरुदेव की आज्ञा है कि किसी को भी कभी वचन मत देना। यदि कोई भूला-भटका भव्य-प्राणी आत्म-कल्याण की भावना से दिशा-निर्देश चाहता है तो हित-मित-मिष्ट वचनों में प्रवचन अवश्य देना पर भूलकर स्वप्न मे भी वचन नही देना। वे कहते हैं -

बन्धन - रूप तन
मन और वचन का
आमूल मिट जाना ही
मोक्ष है।
इसी की शुद्ध-दशा मे
अविनश्वर सुख होता है।
जिसे
प्राप्त होने के बाद
यहाँ

संसार में आना कैसे सम्भव है।
तुम ही बताओ (पृ. ४८६-८७)

जिस प्रकार दूध से घी निकलता है, किन्तु घी को पुनः दूध रूप में लौटाना (बदलना) सम्भव नहीं है। यदि श्रमण-साधना एवं अक्षय-सुख के सम्बन्ध में अब भी कोई शंका हो तो -

क्षेत्र की नहीं
आचरण की दृष्टि से
मैं जहाँ पर हूँ
वहाँ आकर देखो मुझे
तुम्हें होगी मेरी
सही-सही पहचान
क्योंकि
ऊपर से नीचे देखने से
चक्कर आता है
और
नीचे से ऊपर का अनुमान
लगभग गलत निकलता है।
इसीलिए इन
शब्दों पर विश्वास लाओ
हाँ, हाँ !!
विश्वास को अनुभूति मिलेगी,
अवश्य मिलेगी,
मगर
मार्ग मे नहीं, मंजिल पर। (पृ. ४८७-८८)

इस प्रकार सम्बोधित करते हुए सन्त महामौन हो जाते हैं और उस पवित्र वातावरण को अपलक नेत्रो से निहारती है "मूकमाटी"।

इस प्रकार मूकमाटी से प्रारम्भ कथा-वस्तु का अवसान भी मूकमाटी से ही होता है। विस्तृत कथा-वस्तु को अनेक प्रासंगिक प्रसंगों में पिरोकर भी आचार्यश्री ने कथा-वस्तु को दुरूह, और बोझिल नहीं होने दिया है, अपितु कथा का क्रमिक विकास मनोरम, आकर्षक एवं कौतूहल पूर्ण बना रहता है। कथा-क्रम कहीं भी शिथिल, अथवा अक्रमिक (विश्रृखंल) नहीं होने पाया है। जिस प्रकार आचार्यश्री के प्रवचन -काल में श्रोतागण मंत्र-मुग्ध हो श्रवण करते रहते हैं, उसी प्रकार पाठक गण सुरुचिपूर्ण 'मूकमाटी' का आद्यान्त पठन करते रहते हैं। अध्यात्म, धर्म, दर्शन, सिद्धान्त जैसे दुरूह विषयों को भी रुचिकर प्रसंगों में गूँथकर, सरस, आकर्षक एवं प्रेरक बनाना, किसी निस्पृह कर्मयोगी का ही सुकृत्य हो सकता है, जो 'मूकमाटी' में सार्थक हुआ भी है।

•

पात्र–योजना एवं चरित्र–चित्रण

महाकाव्य के तत्वों में कथानक के अनन्तर चरित्र–तत्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। महाकाव्य का मुख्य विषय है – मानवीय चेतना का आकलन। इस चेतना की अभिव्यक्ति महाकाव्य में महिमावान् चरित्रों की अवधारणा से होती है। ये चरित्र ही महाकाव्य के घटनाक्रम का संचालन और महत् जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा का आधार बनते हैं।

प्रत्येक महाकाव्य में दो प्रकार के पात्र होते हैं – प्रमुख पात्र और गौण पात्र। प्रमुख पात्र महाकाव्य के नायक–नायिका होते हैं और गौण पात्रों या अन्य पात्रों में ऐसे चरित्र आते हैं, जिनका स्थान अपेक्षाकृत गौण होता है, किन्तु वे नायक–नायिका के चरित्रोत्कर्ष में सहायक होते हैं।

आलोच्य महाकाव्य 'मूकमाटी' में प्रमुख पात्रों में मूकमाटी (कुम्भ), शिल्पी कुम्भकार, (गुरुदेव) भक्त–सेठ आदि को गणित किया जा सकता है और गौण पात्रों में – सेठ का सेवक, सेठ–परिवार, चिकित्सक दल, आतंकवाद, स्वर्ण–कलश, राजा सेवकगण एवं अन्यान्य प्रसंगों के नायक, गदहा तथा मूर्त–अमूर्त विधान।

पात्रों का चरित्र–विश्लेषण उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के आधार पर करना समीचीन प्रतीत होता है।

'मूकमाटी' महाकाव्य के नायक–नायिका के निर्धारण का बड़ा रोचक प्रश्न उठता है। लौकिक दृष्टि से नायक–नायिका का अभिसार घटित नहीं होता क्योंकि यहाँ का रोमांस आध्यात्मिक प्रकार का है। जैन–दर्शन का अनेकान्त–सिद्धान्त ही इस गुत्थी को सुलझा सकता है। मूकमाटी एक रूपक काव्य है। माटी आत्मा का प्रतीक बन सकती है। माटी को युगों–युगों से, उद्धार के लिए कुम्भकार की प्रतीक्षा है तो इस आत्मा को, जो युगों–युगों से विषय–विकारों से युक्त, जन्म–जरा–मृत्यु के बंधन से जकड़ी है, उसे पथ–प्रदर्शक, उद्धारकारक गुरु की प्रतीक्षा है और वीतरागी, परम तपस्वी, आत्म–तत्त्वज्ञानी साधु को मुक्ति (मोक्ष) की प्रतीक्षा है। कुम्भकार गुरु के प्रतीक हैं जो काव्य के नायक हैं और गुरु के नायक स्वय जिनेन्द्रदेव हैं। इस प्रकार 'मूकमाटी' का काव्यानन्द अध्यात्मपरक है। पाठक को औदात्त की भाव–भूमि पर काव्यानन्दानुभूति हो सकती है। सर्वाधिक पात्र रूपक या प्रतीकात्मक हैं।

कतिपय पात्रों की चारित्रिक विशेषताओ का आकलन क्रमशः निम्नानुसार किया जा सकता है –

मूकमाटी –

'मूकमाटी' आलोच्य महाकाव्य की नायिका है – जिसे युगों–युगों से उद्धारकर्ता कुम्भकार की प्रतीक्षा है जो उसे मगल–घट का रूप देगा, जिसकी सार्थकता गुरु के पद–प्रक्षालन में प्रतिपादित होगी। माटी की अनन्त महिमा को सन्त कवि ने कृति में यत्र–तत्र गाया है, किन्तु कृति के आरंभ में माटी के ये विशेषताएँ निरूपित की गई हैं –

सकोचशीला, लाजवती, लावण्यवती, पतिता, पद–दलिता, दुखिनी, त्यक्ता, भाग्यहीना, माटी माँ –धरती से कहती है – "इस काया की समाप्ति कब होगी? अनन्त गुणों को पाकर भी इस जीवन का उन्नयन कब होगा ? कोई उपाय बताओ माँ।" माँ–धरती कुम्भकार के संसर्ग का संकेत देती है, जहाँ से जीवन–यात्रा प्रारंभ होगी। माटी कुम्भ के रूप में साकार हो, सातिशय हो जाती है, जो भक्त सेठ की सहकारी बनती है। इस प्रकार माटी के उदात्त गुणों की सयोजना हुई है। इस प्रकार 'भू सत्तायाम्' की प्रतिष्ठापना माटी की विशेषताओं में प्रदर्शित होती है।

शिल्पी कुम्भकार –

वीतरागी श्रमण के प्रतीक कुम्भकार हैं। कुम्भकार महाकाव्य के नायक हैं जो माटी को मंगल–कलश का रूप देते हैं और कथानक के चरमोत्कर्ष में निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधु के रूप में सम्बोधित करते हैं। शिल्पी की चारित्रिक विशेषताएँ निम्नानुसार अंकित हैं – वृद्ध, उन्नत ललाट, केशहीन, स्वावलम्बी, अविकल्पी, दृढ़संकल्पी, कर्त्तव्य–परायण, अहिंसक, साधु–वृत्ति वाला, शील स्वभावी क्षमा की साक्षात् मूर्ति।

साधु –

वीतरागी श्रमण विषय–कषायादि जन्य विकारों का विजेता, अनियत–विहार वाला,

नियमित विचार वाला और सौम्य–शान्त छबिवाला होता है। निम्नांकित पंक्तियाँ साधु के अनेकानेक गुणों (विशेषताओं) को अभिव्यक्त करती हैं –

पात्र हो पूत – पवित्र
पद–यात्री हो, पाणिपात्री हो
पीयूष – पायी हंस–परमहंस हो,
अपने प्रति वज्र सम कठोर
पर के प्रति नवनीत ......
मृदु और
पर की पीड़ा को अपनी पीड़ा का
प्रभु की ईडा में अपनी क्रीडा का
संवेदन करता हो।
पाप–प्रपंच से मुक्त, पूरी तरह
पवन–सम निःसंग
परतन्त्र – भीरु,
दर्पण – सम दर्प से परीत,
हरा–भरा फूला–फला
पादप–सम विनीत ।
नदी–प्रवाह–सम लक्ष्य की ओर
अरुक, अथक .... गतिमान।
मानापमान समान जिन्हें
योग में निश्चल मेरु–सम
उपयोग में निश्छल धेनु– सम
लोकैषणा से परे हों
मात्र शुद्ध–तत्त्व की,
गवेषणा में परे हो,
छिद्रान्वेषी नहीं
गुण–ग्राही हों,
प्रतिकूल शत्रुओं पर
कभी बरसते नहीं
अनुकूल मित्रों पर
कभी हरसते नहीं
और
ख्याति–कीर्ति लाभ पर
कभी तरसते नहीं।
क्रूर नहीं, सिंह–सम निर्भीक
किसी से कुछ भी माँग नहीं भीख,
प्रभाकर–सम परोपकारी
प्रतिफल की ओर
कभी भूल कर भी ना निहारें,
निद्राजयी, इन्द्रिय – विजयी
जलाशय सम सदाशयी
मिताहारी, हित–मित–भाषी
चिन्मय – मणि के हों अभिलाषी ;
निज दोषों के प्रक्षालन हेतु
आत्म–निन्दक हों
पर निन्दा करना तो दूर,
पर निन्दा सुनने को भी

जिनके कान उत्सुक नहीं होते
मानो हों बहरे।
यशस्वी, मनस्वी और तपस्वी
होकर भी
अपनी प्रशंसा के प्रसंग में
जिनकी रसना गूँगी बनती है।
सागर-सरिता-सरवर- तट पर
जिनकी
शीत-कालीन रजनी कटती,
फिर
गिरि पर कटते ग्रीष्म दिन
दिनकर की अदीन छाँव में। (पृ. ३००-२)

ऐसे करुणा-सागर, तारण-तरण जहाज हैं – मुनिवर, जो पद-यात्री, पाणिपात्री, पीयूष-पायी-हस, अपने प्रति वज्र-सम कठोर, पर के प्रति नवनीत सम मृदु, पाप-प्रपंच से मुक्त, पवन-सम-नि.संग, परतत्र-भीरु, हरित-फलित-पादप-सम विनीत, नदी-प्रवाह-सम लक्ष्य की ओर अथक गतिमान, मानापमान में सम, उपयोग में निश्छल-धेनु-सम, लौकेषण से परे, शुद्ध तत्त्व की गवेषणा में लीन, गुण-ग्राही, छिन्द्रान्वेषी नही, ख्याति कीर्ति से दूर, क्रूर नही, सिह-सम-निर्भीक, प्रभाकर-सम परोपकारी, निद्रा-जयी, इन्द्रिय-विजयी, मिताहारी, हित-मित-भाषी, चिन्मय-मणि के अभिलाषी, आत्म-निदक, पर-निंदा से दूर, यशस्वी, तपस्वी, मनस्वी होकर भी आत्म-प्रशंसा से दूर, शीत-उष्ण दिनों में सागर, सरिता, सरोवर और गिरि - गुफाओं में साधन् लीन .... ऐसे है श्रमण-सत।

भक्त सेठ

जिनेन्द्र भक्त-सेठ जैन-श्रावक का प्रतीक है। श्रावक का शाब्दिक अर्थ है – श्रद्धावान्, विवेकवान् और क्रियावान्। षट् आवश्यक का पालन करने वाला, संयमी, दयालु, व्रती-आत्मार्थी है सेठ। सुपात्र के आहार-दान के पश्चात् सेठ के मन में विराग के भाव जागृत हो जाते हैं और आगे कथाक्रम के विकास में सहकारी पात्र बनकर, कथानक के विकास में सहयोगी पात्र के रूप में चित्रित है। कुम्भ के सहारे एव मार्ग-दर्शन में अनेक कठिनाइयों को पार करते हुए, अन्ततः गुरुदेव की शरण मे पहुँच कर, मुक्ति की कामना करते हैं, जो गुरु तारण-तरण-जहाज हैं। सेठ-परिवार भी सेठ के साथ है।

अन्य पात्रो में सेठ का सेवक, परिवार, चिकित्सक दल, राजा, राजा के सेवकगण, तथा अन्य प्रतीकात्मक पात्र हैं।

आतंकवाद

संत-कवि ने आतकवाद का मानवीयकरण किया है। आजकल आतंकवाद एक विकराल समस्या बनकर खड़ा है। आतक सत् कार्यों के सम्पादन में बाधक तत्त्व है। आध्यात्मिक जगत् में विषय-कषाय, भोग-विलास, मन की चंचलता, इन्द्रिय-लोलुपता-आत्म-कल्याण के मार्ग में आतंकवाद के ही रूप हैं। इन्हें परास्त किये बिना आत्मार्थी आगे नही बढ़ सकता है। ये मनोविकार मार्ग में अवरोधक बनकर, पतन के मार्ग पर धकेलने वाले हैं। अतएव आन्तरिक अन्तद्वन्द्व (आतंकवाद) का शमन ही मुक्ति-मार्ग का प्रारभ है। आचार्यश्री ने अमूर्त भावों की मूर्त रूप में व्यजंना की है। आतंकवाद को विकराल रूप में चित्रित किया गया है। आतंक का सागरूपक दृष्टव्य है –

दिखा आतक्वाद का दल
हाथियों को भी हताहत करने का बल।
जिनके हाथो मे हथियार हैं,
बार-बार आकाश मे वार कर रहे हैं,
जिससे ज्वाला वह
बिजली की कौंध-सी उठती, और
आँखें मुद जातीं साधारण जनता की इधर ।

जो बार–बार होठों को चबा रहे हैं ?
क्रोधाविष्ट हो रहे हैं,
परिणामस्वरूप, होठों से
लहू टपक रहा है
जिनका तन गठीला है,
जिनका मन हठीला है
जिनने/ धोती की निचली छोरों को ऊपर उठाकर
कसकर कटि में लपेटा है,
केसरी की कटि–सी
जिनकी कटि नहीं–सी है,
कदली तरु–सी जिनकी जंघायें
जिनका माँस
अट्हास कर रहा है।
यही कारण है कि
जिनके घुटने दूर से दिखते नही
निगूढ़ में जा घुस रहें हैं।
मस्तक के बाल/ सघन, कुटिल और कृष्ण हैं,
जो स्कन्धों तक लटक रहे हैं
कराल–काले व्याल से लगते हैं।
जिनका विशाल वक्ष–स्थल है,
जिनकी पुष्ट पिडरियों में,
नसों का जाल उभरा है
धरा में वट की जडें–सी
जिनकी आकुल आँखें,
सूर्यकान्त मणि–सी
अग्नि को उगल रही हैं।
जिनकी ललाट तट पर
कुंकुम का त्रिकोणी तिलक लगा है,
लगता है, महादेव का तीसरा नेत्र ही
खुलकर देख रहा है।
राहु की राह पर चलने वाला है दल
आमूल–चूल काली काया ले।
क्रूर–काल को भी कंपकंपी छूटती है
जिन्हें/ एक झलक लखने मात्र से।
काठियावाड़ के युवा घोड़ों की पूँछ–सी
ऊपर की ओर उठी। मानातिरेक से तनी
जिनकी काली–काली मूँछें हैं/ जिनके गठीले संपुष्ट –
बाजुओं को देखकर/ प्रतापशाली भानु का बल भी
बावला बनता है/ जिन बाजुओं में/ काले धागों से कसे
निम्ब–फल बँधे हैं, अन्त–अन्त में यूँ कहूँ कि
जिनके अंग–अंग के अन्दर/ दया का अभाव ही भरा है।
मुख हृदय का अनुकरण करता है ना ! (पृष्ठ ४२६–२८)

●

रस-निरूपण एवं शिल्प विधान

'रसात्मकं वाक्यं काव्यं' - रसात्मक वाक्य ही काव्य है। रस काव्य की आत्मा है। काव्य (कविता) साहित्य का एक प्रधान अंग है और साहित्य है जीवन। काव्य को जीवन की व्याख्या कहा गया है। रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को ही काव्य कहा गया है। रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि, और रस को काव्य की आत्मा कहा जाता है किन्तु रीति वक्रोक्ति और ध्वनि काव्य की आत्मा नहीं अलंकरण कहे जा सकते हैं, जो काव्य के शिल्प-विधान में परिगणित किये जा सकते हैं।

काव्यानन्द ही रस है। हमारे जीवन में ऐसे अनेक अवसर उपस्थित होते हैं, जब हम किसी विशेष रचना को पढ़कर आनन्द से झूमने लगते हैं। यही आनन्द रस है। सहृदय पुरुषों के हृदय में स्थित विभाव, अनुभाव और सचारी भावों में व्यक्त स्थायी भाव ही रस रूप में परिणत हो जाता है। साहित्य में नौ रस माने गये हैं। वात्सल्य को भी दसवाँ रस माना जाता है।

महाकाव्य में एक प्रधान रस और शेष अंगी (गौण) रस के रूप में निरूपित किये जाते हैं। काव्यशास्त्रीय मान्यता के अनुसार महाकाव्य में श्रृंगार, वीर या शान्त रसों में से किसी एक की प्रधानता के कारण भावाभिव्यंजना अधिक सशक्त हुई है। यद्यपि रसों की अन्तः सलिला सम्पूर्ण काव्य में प्रवाह मान रहती है। जीवन के नाना संघर्षों में रत पात्रों के क्षण-क्षण परिवर्तित मनोभावों की व्यजंना के कारण गंभीर रसिकता की अपेक्षा सफल भावाभिव्यक्ति ही महाकाव्य की विशेषता बन गई है।

आलोच्य महाकाव्य 'मूकमाटी' में शान्त-रस प्रधान रस है और अन्य रस गौण हैं। प्रसगानुसार नौ रसों का सम्यक् विवेचन हुआ है। शान्त-रस का स्थायी भाव-निर्वेद, शम या शान्ति है। किसी महापुरुष के दर्शन, तत्वज्ञान और वैराग्य आदि से शान्त रस की उत्पत्ति होती है। कृतिकार स्वत· शान्तरस के प्रतीक हैं। जिनके दर्शन मात्र से भावों में निर्मलता और चंचलमन को शान्ति की अनुभूति होती है।

संत-कवि ने रस-निरूपण में नई-नई उद्‌भावनाएँ की हैं। 'मूकमाटी' में रसों का वर्णन इस प्रकार है। कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं -

श्रृंगार-रस -

तन मिलता है, तनधारी को/ सुरूप या कुरूप,
सुरूप वाला रूप में और निखार
कुरूप वाला रूप में सुधार/ लाने का प्रयास करता है
आभरण, आभूषणों, श्रृंगारों से।
रस-रसायन की यह/ ललक और चखन
पर-परायन की यह/ परख और लखन
कब से चली आ रही है/ यह उपासना वासना की ? (पृष्ठ १३९)

अथवा

लज्जा के घुँघट में /डूबती-सी कुमुदिनी,
प्रभाकर के कर-छुवन से,
बचना चाहती है वह,
अपनी पराग को - सराग मुद्रा को -
पाँखुरियों की ओट देती है। (पृष्ठ २)

* * * * *

बाल-भानु की भास्वर आभा
निरन्तर उठती चञ्चल लहरों में
उलझती हुई-सी लगती है/ कि
गुलाबी साड़ी पहने,/ मदवती अबला-सी

स्नान करती–करती /लज्जावंश सकुचा रही है। *(पृष्ठ ४७९)*

हास्य रस –

हँस–हँस कर बहस मत कर
हास्य–रस की कीमत इतनी मत कर।
तेरे अभिमत पर हम सम्मत नहीं हैं,
हँसी की बात हम स्वीकार नहीं सकते
सत्य तथ्य की भाँति किसी कीमत पर।

* * * * *

हँसन–शील/ प्रायः उतावला होता है
कार्याकार्य का विवेक
गम्भीरता धीरता कहाँ उसमें ?
बालक सम बावला होता है वह
तभी तो..... ! स्थित–प्रज्ञ हँसते कहाँ ?
मोह–माया के जाल में
आत्मविज्ञ फँसते कहाँ ? *(पृष्ठ १३३–३४)*

करुण–रस –

आचार्यश्री के शब्दों में – "करुण रस वह है, जो कठिनतम पाषाण को भी मोम बना देता हैं।" (पृ. १५९) यथा –

स्वयं पतिता हूँ
और पातिता हूँ औरों से,
.....अधम पापियों से
पद–दलिता हूँ माँ !
सुख–मुक्ता हूँ,
दुख–युक्ता हूँ
तिरस्कृत त्यक्ता हूँ माँ !

* * * * *

यातनायें पीड़ायें ये।
कितनी तरह की वेदनायें
कितनी और..... आगे
कब तक ..... पता नहीं
इनका छोर है या नहीं। *(पृष्ठ ४)*

* * * * *

अथवा

बिन्दु–बिन्दु करके
दृग–बिन्दु के रूप में
करुणा कह रही है –
कण–कण को कुछः
परस्पर कलह हुआ तुम लोगों में
बहुत हुआ वह गलत हुआ। *(पृष्ठ १४८–१४९)*

* * * * *

सन्तान की अवनति में
निग्रह का हाथ उठता है माँ का,

और
सन्तान की उन्नति में
अनुग्रह का माथा उठता है माँ का। (पृष्ठ १४८)

रौद्र-रस -

कराल-काला रौद्र-रस
जग जाता है ज्वलनशील
हृदय-शून्य अदय मूल्य वाला
घटित घटना विदित हुई उसे
* * * * *
पित्त क्षुभित हुआ उसका
पित्त कुपित हुआ
भृकुटियाँ टेढ़ी तन गईं
आँख की पुतलियाँ
लाल-लाल तेजाबी बन गईं।
देखते-देखते गुब्बारे-सी
फड़फडाती लम्बी,
नासा फूलती गई उसकी। (पृष्ठ १३८)
* * * * *
लक्ष्मण की भाँति उबल उठा/ आतंक फिर से!
पकड़ो ! पकड़ो ! ठहरो ! ठहरो !
सुनते हो या नहीं, अरे बहरो!
मरो या /हमारा समर्थन करो!
* * * * *
अरे पाप के मापदण्डो !
सुनो ! सुनो ! . ..जरा सुनो ! (पृष्ठ ४६७)

वीर-रस -

वीर-रस के सेवन करने से
तुरन्त मानव-खून
खूब उबलने लगता है,
काबू में आता नहीं वह
दूसरों को शान्त करना तो दूर,
शान्त माहौल भी खौलने लगता है
ज्वालामुखी-सम।
और
इसके सेवन से
उद्रेक-उद्दण्डता का अतिरेक
जीवन मे उदित होता है,
पर पर अधिकार चलाने की भूख
इसी का परिणाम है ।
बबूल के ठूँठ की भाँति
मान का मूल कडा होता है
और खड़ा होता है, पर को नकारता

पर के मूल्य को अपने पदों दबाता है।
मान को धक्का लगते ही
वीर–रस चिल्लाता है
आपा भूल कर, आग बबूला हो
पुराण पुरुषों की परम्परा को ठुकराता है। (पृष्ठ १३१–१३२)

* * * * *

'नहीं, नहीं, किसी को छोडूँगी नहीं।'
यूँ गरजती / दावानल–सम धधकती वनी सी–बनी। (पृष्ठ २३३–३४)

* * * * *

भयानक – रस –

भीतर से बाहर, बाहर से भीतर/ एक साथ, सात सात हाथ के
सात–सात हाथी आ जा सकते
इतना बड़ा गुफा – सम
महासत्ता का महाभयानक/ मुख खुला है,
जिसकी दाढ़–जबाड़ में,
सिंदूरी आँखोंवाला भय
बार–बार घूर रहा है बाहर,
जिसके मुख से अध–निकली लोहित रसना,
लटक रही है/और
जिससे टपक रही है लार
लाल–लाल लहू की बूँदें–सी। (पृष्ठ १३६)

* * * * *

रुधिर में सनी–सी, भय की जनी
ऊपर उठी–तनी भृकुटियाँ
लपलपाती रसना बनी, मानों
आग की बूँदें टपकाती हों, घनी ..... कहीं.... । (पृष्ठ २३३)

बीभत्स–रस –

व्याघ्र–सम भयानक जबड़ों में
बड़ी–बड़ी टेढ़ी–मेढ़ी
तीखी दन्तपंक्तियाँ चमक रही हैं,
जिनकी रक्त–लोलुपी लाल रसना
बार–बार बाहर लपक रही है,
विषाक्त–कंटक वाली
ऊपर उठी पूँछ है जिनकी
ऐसे माँस–भक्षी
महा–मगरमच्छ,
भोजन–गवेषणा में रत। (पृष्ठ ४४४–४५)

अद्भुत–रस –

इस अद्भुत घटना से
विस्मय को बहुत विस्मय हो आया।
उसके विशाल भाल में,
ऊपर की ओर उठती हुई

लहरदार विस्मय की रेखायें उभरीं
कुछ पलों तक विस्मय की पलकें
अपलक रह गईं !
उसकी वाणी मूक हो आई,
और/ भूख मन्द हो आई। (पृष्ठ १३८)

शान्त–रस –

प्रस्तुत महाकाव्य का प्रधान रस शान्त–रस है। इसलिए यत्र–तत्र सर्वत्र – शान्त–रस के उदाहरण भरेपड़े हैं। आचार्यश्री ने शान्त– रस की परिभाषा इन शब्दों में की है –

शान्त–रस किसी बहाव में/ बहता नहीं कभी
जमाना पलटने पर भी/ जमा रहता है, अपने स्थान पर। (पृ. १५७)

शान्त–रस का संवेदन वह
आनन्द एकान्त में ही हो
और तब/ एकाकी हो संवेदी वह..... !
रंग और तरंग से रहित
सरवर के अन्तरंग से
अपने रंगहीन या रंगीन अंग का
संगम होना ही संगत है।
शान्त–रस का यही संग है/ यही अंग (पृष्ठ १५९)

* * * * *

सह–धर्मी सम/ आचार विचारों पर ही,
इसका प्रयोग होता है,/ इसकी अभिव्यक्ति
मृदु मुस्कान के बिना, सम्भव ही नहीं है।
वात्सल्य–रस के आस्वाद मे,
हल्की–सी मधुरता फिर
क्षण–भगुरता झलकती है। (पृष्ठ १५७–१५८)

* * * * *

राग–रंग त्यागिनी/ विराग–संग भाविनी
सरला–तरला, मराली–सी बनी। (पृष्ठ २०८)

* * * * *

कुम्भ के विमल–दर्पण में
सन्त का अवतार हुआ है। और
कुम्भ के निखिल अर्पण में
सन्त का आभार हुआ है। (पृष्ठ ३५४–३५५)

* * * * *

करुणा–रस उसे माना है, जो
कठिनतम पाषाण को भी
मोम बना देता है,
वात्सल्य का बाना है,
जघनतम नादान को भी
सोम बना देता है।
शान्त–रस का क्या कहें
संयत–रत धीमनो को ही,
'ओम्' बना देता है।

* * * * *

सब रसों का अन्त होना ही –
शान्त–रस है।
रस–राज, रस–पाक शान्त–रस। (पृष्ठ १५९–१६०)

वात्सल्य–रस –

'मूकमाटी' शान्त और वात्सल्य रस का सागर है। शान्त–रस के अनन्तर वात्सल्य–रस का परिपाक ही यत्र–तत्र परिलक्षित होता है। माँ–बेटी के सम्वाद वात्सल्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। प्रशान्त वनस्थली की गोद में भक्त सेठ–परिवार का संरक्षण, उत्साह–वर्धन आदि का चित्रांकन वात्सल्य–रस की ही अनुभूति कराते हैं। अनेकशः विपत्तियों के आगमन, तथा उनसे रक्षा के प्रसंगों में वात्सल्य और करुणा का सागर लहराता नजर आने लगता है। आशय यह है कि मूकमाटी का काव्यानन्द लौकिक एवं अलौकिक रूप से पाने के लिए उसमें जितना डूबते जायें हमें उतना ही आनन्द एवं संतोष प्राप्त होता है।

यहाँ यही उक्ति चरितार्थ होती है – "ज्यों–ज्यों डूबत श्याम रंग, त्यों–त्यों उज्जर होय।" जैसे–जैसे पाठक काव्यानंद की अनुभूति करता है, वैसे–वैसे उसे आत्मानंद (अध्यात्म) की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा मिलती है। तभी वह राग–द्वेष, आकुल–व्याकुलता, विषय–भोग और सुख–शान्ति के यथार्थ चिन्तन–मनन को विवश हो जाता है। अध्ययन–पठन की इस तात्कालिक प्रभावना को यदि पाठक–अध्येता अपने हृदय में स्थायी बना सका तो आत्म–कल्याण सुनिश्चित है। वात्सल्य के कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं –

महासत्ता माँ के
गोल–गोल कपोल तल पर
पुलकित होता है यह वात्सल्य।
करुणा–सम वात्सल्य भी
द्वैत–भोजी तो होता है
पर, ममता समेत मौजी होता है।
इसमें/ बाहरी आदान–प्रदान की प्रमुखता रहती है। (पृष्ठ १५७)

* * * * *

अपने हों या पराये,
भूखे–प्यासे बच्चों को देख
माँ के हृदय में दूध नहीं रुक सकता,
बाहर आता ही है, उमड़कर,
इसी अवसर की प्रतीक्षा रहती है,
उस दूध को। (पृष्ठ २०१)

* * * * *

जिसकी आँखें/ और सरल–
और तरल हो आ रही हैं,
जिनमें/ हृदयवती चेतना का
दर्शन हो रहा है। (पृष्ठ ६)

* * * * *

देखो ना !
माँ की उदारता–परोपकारिता
अपने वक्षस्थल पर
युगों–युगों से ..... चिर से
दुग्ध से भरे/ दो कलश ले खड़ी है,
क्षुधा तृषा–पीड़ित/ शिशुओं का पालन करती रहती है –
और भयभीतों को, सुख सेरीतों को
गुपचुप हृदय से,
चिपका लेती है, पुचकारती हुई। (पृष्ठ ४७६)

* * * * *

माँ की गोद में बालक हो
माँ उसे दूध पिला रही हो
बालक दूध पीता हुआ
ऊपर माँ की ओर निहारता अवश्य,
अधरों पर, नयनों में
और/ कपोल युगल पर। (पृष्ठ १५८)

* * * * *

प्रायः माँ दूध पिलाते समय,
अपने अचल में
बालक का मुख छिपा लेती है। (पृष्ठ १५८)

* * * * *

जिसके/ दोनों गालों पर
गुलाब की आभा ले
हर्ष के सम्वर्द्धन से
दृग–बिन्दुओं का अविरल/ वर्षण हो रहा है। (पृष्ठ ६)

प्रकृति–चित्रण –

प्रकृति मानव की आदि सहचरी है। मनुष्य का प्रकृति से अनादि सम्बन्ध है। वह उसकी गोद में जन्मा, पला–पुसा, जीवन–यापन करता हुआ अन्ततः उसकी ही गोद में इह–लीला समाप्त कर देता है। मानव–प्रकृति प्रेरणा और प्रकृति – चेतना से आजीवन प्रभावित रहता है। मानव स्वभावत सौन्दर्य–प्रेमी है। प्रकृतिका सौन्दर्य शाश्वत होता है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथ्वी, पर्वत, सागर, उषा, संध्या, ज्योत्स्ना, वन, उपवन, सरिता, सरोवर, पादप–पुष्प, पशु–पक्षी, कीट, पतंग, ऋतुएँ आदि–आदि प्राकृतिक सुषमा के शाश्वत् उपादान हैं। मानव–सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान–विज्ञान, कला, साहित्य और काव्य सभी की रचना और विकास में प्रकृति की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। मानवीय ज्ञान और चेतना के अन्य रूपों की अपेक्षा काव्य का प्रकृति से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। कवियों ने अपने कला–विलास के उपकरण, भावाभिव्यंजन के साधन, अलकरण–वृत्ति के उद्घोषक प्रतीक, सौन्दर्य–चेतना के प्रतिमान प्रकृति से ही सँजोये हैं।

महाकाव्य में प्रकृति–चित्रण का अधिक अवकाश होता है। कृतिकार प्रकृति का प्रयोग उस पृष्ठभूमि में करता है, जिस प्रकार कथा–प्रसगों की निर्मिति, घटना–क्रम का विकास, चरित्र–विश्लेषण की प्रक्रिया और रसात्मकता की स्थिति निर्भर करती है। काव्य में – प्रकृति–चित्रण की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित है, यथा – आलम्बन के रूप में, उद्दीपन के रूप में, आलकारिक रूप में, वातावरण के रूप में, मानवीयकरण के रूप में, संवेदनात्मक रूप में, उपदेशात्मक रूप में, रहस्यात्मक रूप में एव संदेशवाहक के रूप में आदि–आदि।

आलोच्य महाकाव्य में प्रकृति–चित्रण समुचित रूप में हुआ है। कृति का प्रारंभ ही प्राकृतिक परिवेश में हुआ है। यथा –

सीमातीत शून्य में/ नीलिमा बिछाई,
और इधर.... नीचे/ निरी नीरवरा छाई,
निशा का अब सान हो रहा है
उषा की अवसान हो रही है (पृष्ठ १)

* * * * *

प्राची के अधरों पर/ मंद मधुरिम मुस्कान है,
सर पर पल्ला नहीं है/ और
सिंदूरी धूल उड़ती–सी /रंगीन–राग की आभा –
भाई है, भाई.....। (पृष्ठ १)
लज्जा के घूँघट में / डूबती–सी कुमुदिनी
प्रभाकर के कर–छुवन से / बचना चाहती है वह,
अपनी पराग को, सराग मुद्रा को –

पाँखुरियों की ओट देती है। *(पृ. २)*

इसी प्रकार कुदुदिनी, चाँदनी, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, सौरभ, पवन, सागर, सरिता–तट आदि प्राकृतिक उपादानों का चित्रण किया है। 'मूकमाटी' में महाकाव्य के अनुरूप प्राकृतिक परिवेश समेटा गया है। प्रकृति को अनेक रूपों में चित्रित किया गया है। प्रकृति के कतिपय रूप सोदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं –

आलम्बन के रूप में –

उत्तुंग–तम गगन चूमते
तरह–तरह के तरुवर,
छत्ता ताने खड़े हैं,
श्रम–हारिणी धरती है
हरी–भरी लसती है
धरती पर छाया ने दरी बिछाई है।
फूलों–फलों–पत्रों से लदे
लघु–गुरु गुल्म–गुच्छ
श्रान्त–श्लथ पथिकों को
मुस्कान–दान करते से।
आपाद–कण्ठ पादपों से लिपटी
ललित लतिकायें वह
लगतीं हैं, आगतों को बुलाती लुभाती– सी।
और/ अविरल चलते पथिकों को
विश्राम लेने को कह रही हैं। *(पृ. ४२३)*

मानवीयकरण के रूप में

सागर से गागर भरभर
अपार जल के निकेत हुई हैं
गजगामिनी, भ्रमभामिनी
दुबली–पतली कटि वाली
गगन की गली में अबला–सी ।
तीन बदली निकल पड़ी हैं
दधि–धवला साड़ी पहने
पहली वाली बदली वह/ ऊपर से
साधना–रत साध्वी–सी लगती है।
रति–पति–प्रतिकूला–मतिवाली
पति–मति–अनुकूला गति वाली
इससे पिछली, बिजली बदली ने
पलास की हँसी–सी साड़ी पहनी
गुलाब की आभा फीकी पड़ती जिससे।
लाल पगतली वाली लाली–रची,
पद्मिनी की शोभा सकुचाती है जिससे,
इस बदली की साड़ी की आभा वह
जहाँ–जहाँ गई चली
फिसली–फिसली, बदली वहाँ की आभा थी।
और/ नकली नहीं, असली
सुवर्ण–वर्ण की साड़ी पहन रखी है
सबसे पिछली बदली ने। *(पृ. १९९–२००)*

वातावरण के रूप में –

स्वयं रज–विहीन सूरज ही

सहस्र करों को फैलाकर,
सुकोमल किरणांगुलियों से
नीरज की बंद पाँखुरियों–सी
शिल्पी की पलकों को सहलाता है। (पृ. २६५)

आलंकारिक रूप में –

मुँदी आँखें खुलती हैं
जिस भाँति
प्रभाकर के कर–परस पाकर
अधरों पर मन्द–मुस्कान ले,
सरवर में सरोजिनी खिलती है। (पृ. २१५)

प्रतीकात्मक रूप में – (लेश्या की प्रतीक)

तीन बदली निकल पड़ी हैं,
दधि–धवला साड़ी पहने
पहली वाली बदली वह/ ऊपर से
साधना–रत साध्वी–सी लगती है। (पृ. १९९)

* * * * *

चाण्डाल–सम प्रचण्ड शील वाले हैं
घमण्ड के अखण्ड पिण्ड बने हैं,
इनका हृदय अदय का निलय बना है,
रह–रहकर कलह
करते ही रहते हैं ये,
बिना कलह भोजन पचता ही नहीं इन्हें।
इन्हे देखकर दूर से ही
भूत भाग जाते हैं भय से,
भयभीत होती अमावस्या भी इनसे,
दूर कहीं छुपी रहती वह,
यही कारण है कि
एक मास में एक ही बार –
बाहर आती है आवास तजकर। (पृ. २२८)

उपदेशात्मक रूप में –

अरे ! पथ भ्रष्ट बादलो !
बल का सदुपयोग किया करो,
छल का न उपयोग किया करो,
छल–बल से,
हल नहीं निकलने वाला कुछ भी।
कुछ भी करो या न करो,
मात्र दल का अवसान ही हल है। (पृ. २६१)

संवेदनात्मक रूप में –

विनय–विश्वास विचारशील
प्रकृति के अनुरूप प्रकृति वाला
वन–उपवन–विचरण–धर्मा
वसन्त–वर्षा–तुषार–धर्मा
सब ऋतुओ में समान–कर्मा
जीवन के क्षण–क्षण में
मैत्रिक भाव का आस्वादन करता,

जीवन के क्षण-क्षण में,
पैत्रिक-भाव का अभिवादन करता
पवन का आगमन हुआ। (पृ. २५७-२५८)

उद्दीपन के रूप में -

अणु-अणु-कण-कण ये
वन-उपवन और पवन
भानु की आभा से धुल गये हैं।
कलियाँ खुल-खिल पड़ीं
पवन की हँसियों में,
छवियाँ घुल मिल गईं
गगन की गलियों में,
नयी उमंग, नये रंग
अंग-अंग में नयी तरंग
नयी ऊषा तो नयी ऊष्मा
नये उत्सव तो नयी भूषा
नये लोचन-समालोचन
नया सिंचन, नया चिन्तन
नयी शरण तो नयी वरण
नया भरण तो नया SS भरण
नये चरण-संचरण
नये करण-संस्करण
नया राग नयी पराग
नया जाग, नहीं भाग
नये हाव तो नयी तृपा
नये भाव तो नयी कृपा
नयी खुशी तो नयी हँसी
नयी-नयी यह गरीयसी। (पृ. २६२)

रहस्यात्मक रूप में -

सागर में से उठते-उठते
क्षारपूर्ण नीर-भरे
क्रम-क्रम से वायुयान-सम
अपने-अपने दलों सहित
आकाश में उड़ते हैं।
पहला बादल इतना काला है
कि जिसे देखकर
अपने सहचर-साथी से बिछुड़ा
भ्रमित हो भटका भ्रमर-दल
सहचर की शंका से ही मानो
बार-बार इससे आ मिलता
और
निराश हो लौटता है....
यानी
भ्रमर से भी अधिक काला है
यह पहला बादल-दल।
दूसरा.... दूर से ही
विष उगलता विषधर-सम नीला
नीलकण्ठ लीला-वाला

जिसकी आभा से
पका पीला धान का खेत भी
हरिताभा से भर जाता है।
और
अन्तिम-दल
कबूतर रंग-वाला है
यूँ ये तीनों,
तन के अनुरूप ही मन से कलुषित हैं। (पृ. २२७-२८)

संदेश-वाहक के रूप में (संप्रेषणात्मक रूप में) -

लो, स्मरण मात्र से ही
मित्र का मिलन हुआ .... सो
गुलाब फूला न समाया
मुदित-मुख
आमोद झूला झूलने लगा,
परिणाम यह हुआ-
आगत मित्र का स्वागत स्वयमेव हुआ।
फूल ने पवन को
प्रेम में नहला दिया,
और
बदले में
पवन ने फूल को
प्रेम से हिला दिया। (पृ २५८)

* * * * *

दूसरों को माध्यम बनाकर
मध्यम-यानी समता की ओर बढ़ना
बस, सुगमतम पथ है,
और
औरो के प्रति अपने अन्दर भरी
ग्लानि-घृणा के लिए विरेचन!
पवन के इस आशय पर
उत्तर के रूप में, फूल ने
मुख से कुछ भी नहीं कहा,
मात्र गम्भीर मुद्रा से
धरती की ओर देखता रहा।
फिर/ दया-द्रवीभूत होकर
करुणा-छलकती दृष्टि फेरी
सुदूर बैठे शिल्पी की ओर....
जो औरों से क्या,
अपने शरीर की ओर भी निहारता नहीं। (पृ. २५९-६०)

ऋतु-वर्णन

महाकाव्य में प्रकृति-चित्रण में ऋतु-वर्णन यथेष्ट महत्त्व रखता है। प्रकृति के व्यापक एवं विविध रूप वर्णन के कारण ऋतुओं का वर्णन स्वाभाविक है। मूकमाटी में प्रासंगिक ऋतु-वर्णन हुआ है, यथा -

ग्रीष्म - ऋतु-वर्णन -

प्रभाकर का प्रचण्ड रूप है

चिलचिलाती धूप है,
बाहर–भीतर, दायें–बायें
आगे–पीछे, ऊपर–नीचे,
धग–धग लपट चल रही है,
बस ! बरस रही केवल
तपन ... तपन ... तपन.... । (पृ. १७७)

वर्षा–ऋतु–वर्णन –

मूसलाधार वर्षा होने लगी ।
छोटी–बड़ी बूँदों की बात नहीं,
जल–प्रपात सम अनुभवन है यह,
धरती डूबी जा रही है जल में,
जलीय सत्ता का प्रकोप
चारों ओर घटाटोप है।
दिवस का अवसान कब हुआ
पता नहीं चल सका,
तमस का आना कब हुआ,
कौन बताये ! किससे पूछे ?
और
बादलों की घुमडन घुटता रहा
बिजली का उमड़न चलता रहा,
रुक–रुक कर/ ओला–वृष्टि होती गई
शीत लहर चलती गई
प्रहर–प्रहर ढ़लते गये। (पृ. ४३९)

शीत–ऋतु–वर्णन –

शीत–काल की बात है
अवश्य ही इसमें/ विकृति का हाथ है
पेड़–पौधों के/ डाल–डाल पर
पात–पात पर। हिम–पात है।
और इसीकी / हाँ में हाँ मिलाता
प्रकृति के साथ/ मिलिन मन, कलिन तन,
बात करता वात है।
कल–कोमल–कायाली
लता–लतिकायें ये
शिशिर–छुवन से पीली पड़ती–सी
पूरी जल–जात हैं। (पृ. ९०)

* * * * *

जहाँ कहीं भी देखा
महि में महिमा हिम की महकी,
और आज !
घनी अलिगुण–हनी
शनि की खनी–सी .....
भय–मद अघ की जनी,
दुगुणी हो आई रात है।
आखिर अखर रहा है,
यह शिशिर सबको। (पृ. ९१)

भाषा शैली

महाकाव्य की भाषा–शैली का स्वरूप अन्य काव्य–रूपों की अपेक्षा विशिष्ट एवं गरिमापूर्ण होता है। गुण, रीति, शब्द–शक्तियाँ, अलंकार, वक्रोक्ति कथन और नवीन परिकल्पन शैली–विधान के प्रमुख उपकरण हैं। इनका सम्बन्ध शैली के बाह्य रूप से होता है। महाकाव्य की शैली गम्भीर होती है। शैली में गम्भीरता भाषा–गत अलंकृति या क्लिष्ट शब्द योजना से नहीं, अपितु कवि की चिन्तन की परिपक्वता और सुदीर्घकालीन साहित्य–साधना से आती है। महाकाव्य की शैली की सामान्य रूप से तीन विशेषताएँ होती हैं–

(i) सम्प्रेषणीयता (ii) प्रसंग गर्भत्व और (iii) व्यञ्जना शक्ति ।

आलोच्य महाकाव्य मूकमाटी में शैली की ये तीनों विशेषतायें उपलब्ध हैं। भाषा खड़ी बोली हिन्दी है। भाषा ओज, प्रसाद, माधुर्यगुण सम्पन्न है। भाषा में भावाभिव्यक्ति की पूर्ण सामर्थ्य है। गहन विषयों और भावानुभूतियों को सुगम शैली और सरल भाषा में अभिव्यक्त किया गया है। आचार्यश्री की भाषा का प्रौढ़तम रूप मूकमाटी में दृष्टव्य है। शब्द–चयन, अर्थान्वेषणीयता, अभिव्यजना–शक्ति, नवीन परिकल्पन, समुचित अलंकार–प्रयोग और शैली की रमणीयता यत्र–तत्र बिखरी नजर आती है।

'मूकमाटी' की भाषा की कतिपय विशेषताएँ हैं, जिनमें लाक्षणिकता और व्यञ्जनात्मकता प्रमुख है। इसके अतिरिक्त ध्वन्यात्मकता, चित्रात्मकता, नाटकीयता, गीतात्मकता (गेयता) आलकारिकता आदि अन्य विशेषताएँ कही जा सकती हैं।

'मूकमाटी' महाकाव्य मे भाषा–सौन्दर्य के लिए लोक–जीवन में प्रचलित मुहावरों, कहावतो, लोकोक्तियों एवं सूक्तियो का प्रचुर प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त शब्द–व्युत्पत्ति, शब्द–विपर्यय, बीजाक्षर के चमत्कार – मन्त्र–विद्या, अंकों का चमत्कार, आयुर्वेद का प्रयोग, सगीत–सुरभि – आधुनिक जीवन में विज्ञानोद्भूत नवीन अवधारणाओ ने भाषा–शैली को मनोरम बना दिया है।

सन्त–कवि आचार्यश्री की भाषा प्राजल, सरस एवं भावानुकूल प्रवाहमयी है। शब्द–योजना श्रुति–सुभग एव कर्ण–कमनीय है। भाषा में तत्सम, अर्द्धतत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी शब्दों का बेहिचक प्रयोग हुआ है। यथा– गुमराह, कौम, आमद, कूबत, मुफ्त, कदम, दर–दर, तश्तरी, इर्द–गिर्द, सिवा, गम, शैतान, खून, खूब, हबस, खुरदरा, काबू, निब, स्टील, स्टार–वार आदि।

महाकाव्य–सृजन–स्थल का सौभाग्य पिसनहारी मढ़ियाजी, जबलपुर (म.प्र.) तथा नयनागिरि, छतरपुर (म.प्र.) तथा अन्य बुन्देलखण्डी भाषा–क्षेत्रों को प्राप्त है। इसलिए आचलिक शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक है। 'मूकमाटी' में बुन्देली भाषा के शब्दों का भी प्रयोग परिलक्षित होता है। कतिपय शब्द इस प्रकार हैं – मठा–महेरी, गाल, गैल, लात, छाती, ववाल, लौंदा, बूरा, चिल–चिलाती आदि। इस प्रकार 'मूकमाटी' की भाषा–शैली महाकाव्य की गरिमा के अनुरूप अनूठी है।

मुहावरे, कहावतें, लोकोक्तियाँ एवं सूक्तियाँ –

भाषा को सजीव, सशक्त, प्रवाहपूर्ण एवं प्रभावी बनाने के लिए मुहावरों, कहावतों, लोकोक्तियो एव सूक्तियो का प्रयोग किया जाता है। 'मूकमाटी' महाकाव्य मुहावरों, कहावतों, लोकोक्तियो एव सूक्तियों का कोष बन गया है/ यथा –

मुहावरे –

अरण्यरोदन, पानी–पानी होना, कूप–मण्डूक होना, खाली हाथ लौटना, बगुला–भक्ति, सिर उठाना, बवाल मे बचना, वार करना, आग–बबूला होना, घूस देना, दाल न गलना, पीठ दिखाना, सर के बल चलना, मुख में पानी आना, बाल–बाल बचना, कछुआ की चाल चलना,

शतरंज की चाल चलना, ढेढ़ी–खीर, कथनी और करनी, दल–बदलू होना, भूत भागना, भोजन न पचना, गला घोंटना, बिच्छू का डंक होना, भय के भूत भागना, दिमाग चढ़ना, दीमक खाना, बाल की खाल निकालना, हाँथ धोना, दाँत कटकटाना, काँटे से काँटा निकालना, सिर के बल गिरना, कड़ुवा घूँट पीना, विष का घूँट पीना, कसौटी पर कसना, काल के गाल में जाना, पाला–सा पड़ना, खाली हाथ लौटना, पराभव के घूँट पीना, पूँछ हिलाना, सर्प सूँघना, मुख मालिन्य होना, आपेसे बाहर होना, खिचड़ी पकाना, आँख लगना, आँखों में काला पानी आना, लात लगाना, राज छुपाना, रंग–रोगन लगाना, उबल पड़ना, लात खाना, लाल होना, सर हिलाना, करवटें बदलना, छिद्र देखना, मुँह में पानी आना, नौ दो ग्यारह होना, कानों में कीलें ठोंकना, लोहे से लोहा लेना, राम–बाण होना, उबलते ओठों से लहू टपकना, होठों का चबाना (होठ चबाना) राहु की चाल चलना, बावला होना, ज्वर चढ़ना, कालामुख होना, आपे में आना, दो टूक बोलना, भूल–चूक होना, सिर उठाना, पश्चात्ताप का घूँट पीना, नीर–क्षीर विवेक, मुँह न दिखाना, सरपट भागना, छल–बल होना, गागर में सागर भरना, अट्टहास करना, काल का कवल होना, बहाव में बहना, बहाने बनाना, मृग–मरीचिका, सिर फिरना, घुटने टेकना, कोप बढ़ना, पारा चढ़ना, चक्कर खाना, सिर के बल होना, प्राण प्रयाण करना, नाव डाँवाँडोल होना, मुँह में झाग आना, अति की इति होना, उबल पड़ना, दिल हिल उठना, पसीना छूटना, नाच नचाना, गले उतरना, श्रीगणेश, एक जान–सी होना, यादें ताजी होना, मन की बात मन में रहना, दीपक की भाँति भभकना, दिल–दहलना, दिल हिलना, फूला न समाना, नाक में दम करना, कुपित होना, भृकुटी टेड़ी करना, छाती से चिपकाना, दोगला होना, हवा–सी बात उड़ना, जमाने का जमघट होना, लक्ष्मण–रेखा, भृकुटियाँ तनना, कूट–कूट कर भरना, ईंट का जवाब पत्थर से देना, दिन कटना, दर–दर भटकना, लोहा लेना आदि।

कहावतें –

पूत के लक्षण पालने में, मुँह में राम बगल में छूरी, नीर–क्षीर विवेक, आमद कम खर्चा ज्यादा, कूबत कम गुस्सा ज्यादा, निन्नानवे का चक्कर, लक्ष्मण–रेखा, गुरबेल और नीम चढ़ी, ईंट का जवाब पत्थर से देना, अपनी आँखों की लाली अपने को नही दिखती, पानी कितना गहरा है, जैसा कहो वैसा करो, दीपक की भाँति भभकना, उबलते कड़ाव में पानी की बूंदें डालना, पूँछ के बल खड़ा होना, रमता जोगी बहता पानी, रस्सी को साँप समझना, ऐड़ी से चोटी तक, कुत्ता कुत्ते को देखकर भोंकता है आदि।

लोकोक्तियाँ –

बायें हिरण दायें जाय, लंका जीत राम घर आय। छोटी को बड़ी मछली साबुत निगलती है, पूरा चलकर करो विश्राम, आधा भोजन कीजिये, दुगुना पानी पीव, तिगुना श्रम चौगुनी हँसी, वर्ष सवा सौ जी, सुई से काम न चले तो तलवार चलाना, अपनी आँख की काली अपने को नहीं दिखती, दाँत मिले तो चने नहीं, चने मिले तो दाँत नहीं, माटी पानी और हवा, सौ रोगों की एक दवा, बिन माँगे मोती मिले माँगे मिले न भीख, आदि।

सूक्तियाँ –

पापी से नहीं पाप से, पंकज से नहीं पंक से घृणा करो।
नर से नारायण बनो, समयोचित कर कार्य।
बहना ही जीवन है।
वसुधैव कुटुम्बकम्।
कर पर कर दो।
मन वांछित फल मिलना ही उद्यम की सीमा है।
भावना भव–नाशिनी।
जब सुई से काम चलता है तो तलवार का प्रहार क्यों ?
काँटे से काँटा निकाला जाता है।

जैसी संगति होती है, वैसी मति होती है।
अनुकूलता की प्रतीक्षा करना सही पुरुषार्थ नहीं है।
असत्य की सही पहचान ही सत्य का अवधान है।
मीठे दही से ही नहीं खट्टे से भी मन्थन करने पर नवनीत निकलता है।
अति के बिना इति से साक्षात्कार सम्भव नहीं।
इति के बिना अथ का दर्शन असम्भव।
परस्परोपग्रहो जीवानाम्।
अधिकार का भाव आना, संप्रेषण का दुरुपयोग है।
सहकार का भाव आना सदुपयोग है, सार्थक है।
वासना का विलास मोह है।
दया का विकास मोक्ष है।
पुरुष का प्रकृति में रमना मोक्ष है, सार है।
बदले का भाव वह दल-दल है, जिसमें बुरी तरह फँस जाते हैं।
बोध सिचन बिना , शब्दों के ये पौधे कभी लहलाते नहीं।
अपने को छोड़कर पर पदार्थ से प्रभावित होना मोह का परिणाम है।
वेतन वाले वतन की ओर कम ध्यान दे पाते हैं।
चेतन वाले तन की ओर कब ध्यान दे पाते हैं?
मृदुता और काठिन्य की सही पहचान तन से नहीं हृदय छूकर होती है।
दुख आत्मा का स्वभाव धर्म नहीं हो सकता।
नैमित्तिक परिणाम कथंचित् पराये हैं।
धन कोई मूलभूत वस्तु है ही नही।
धन का जीवन पराश्रित है।
परीक्षक बनने से पूर्व परीक्षा पास करना अनिवार्य है।
भोग ही तो रोग है।
मर हम मरहम बनें।
मैं दो गला हूँ।
अपनी संस्कृति को विकृत नहीं बनाना।
पीडा की इति ही सुख का अथ है।
विकास के क्रम तब उठते हैं जब मति साथ देती है।
भक्त का भाव भगवान् को भी अपनी ओर खींच लाता है।
श्रमण का श्रृंगार ही समता-साम्य है।
सबको छोड़कर अपने आपमें भक्ति होना ही मोक्ष का धाम है।
अतिथि के बिना कभी तिथियों में पूज्यता आ नहीं सकती।
सर्वसहा होना ही, सर्वस्व को पाना है जीवन में।
मन बैर-भाव का निधान होता ही है।
वही बुद्धिमानी है, हो हित सम्पत्-सम्पादिका और
स्व-पर आपद-सहारिका।

नामकरण-

काव्यशास्त्रीय मान्यतानुसार महाकाव्य का नामकरण-कवि, कथा-वस्तु, नायक या अन्य किसी पात्र के नाम के आधार पर होना चाहिये, किन्तु प्रत्येक सर्ग या खण्ड का नाम उसके वर्ण्य-विषय के आधार पर होना चाहिये। इस दृष्टि से "मूकमाटी" नामकरण सफल एवं सार्थक है। "माटी" इस महाकाव्य की नायिका है। आधुनिक युग में तो नायिका प्रधान महाकाव्य भी रचे गये हैं। यथा-कामायनी, साकेत।

युगों–युगों से मूकमाटी का करुण–क्रन्दन सुनने के लिए हमारे कान बहरे हैं, तभी तो "मूकमाटी" महाकाव्य का अवतरण हुआ है। "माटी" की मूक वेदना और उसकी काव्य करुण–पुकार एक साधक, सहृदय कवि ही सुन सकता है, साधारण सुदृढ़ कवि नहीं। माँ, माटी, मातृ–भूमि स्वर्ग से भी अधिक गरिमामय है–"जननी जन्मभूमिश्च सवर्गादपि गरीयसी–की पवित्र–भावना को साकार करते हुए सन्त–कवि आचार्यश्री ने "मूकमाटी" नामकरण कर माटी की महान् महिमा को उद्घाटित किया है। "मूकमाटी" नामकरण अपने आपमें अनूठा है।

सर्ग–योजना–

वास्तव में महाकाव्य प्रबन्धात्मक कथाकाव्य है, इसलिए सर्ग–योजना का महत्त्व, प्रबन्धत्व के सफल निर्वाह एवं कथा–वस्तु के सम्यक् संयोजन तथा विभाजन की दृष्टि से अवश्य है। सर्गों की संख्या एवं नामकरण की शास्त्रीय परम्परा का अनुगमन आधुनिक युग में समीचीन नहीं है, क्योंकि युग–चेतना और जीवन–मूल्य किसी युग में बँध कर नहीं रह सकते, बल्कि अविरल प्रवाहमान रहते हैं।

"मूकमाटी" में चार खण्ड हैं–जिनका नामकरण क्रमशः "संकर नहीं–वर्ण लाभ" "शब्द सो बोध नहीं––बोध सो शोध नहीं", "पुण्य का पालन–पाप–प्रक्षालन" "अग्नि की परीक्षा चाँदी–सी राख।" खण्डों के नामकरण वर्ण्य विषय के आधार पर सार्थक एवं सफल हैं। माटी अपने प्राथमिक रूप में कूड़ा–कर्कट–कंकड़ मिश्रित रूप में है, उसके परिशोधन से कंकड़ रहित कर, शुद्ध मृदु–रूप में (घट–निर्माण योग्य बनाना) लाना वर्ण–लाभ है, क्योंकि उसके वास्तविक रूप में अपरिमित निर्माण की क्षमतायें निहित हैं। इस प्रकार "संकर नहीं–वर्ण लाभ" नामकरण सार्थक है।

द्वितीय खण्ड के नामकरण का आशय यह है कि शब्द उच्चारण मात्र है। "शब्द" का सम्पूर्ण अर्थ समझना "बोध" है और इस "बोध" अर्थ को अनुभूति और आचरण में लाना "शोध" है।

तृतीय खण्ड–"पुण्य का पालन, पाप–प्रक्षालन" से सुस्पष्ट है कि मन–वचन–काय की निर्मलता से, शुभ कार्यों के सम्पादन से, लोक–कल्याण की कामना से पुण्य उपार्जित होता है और क्रोध, मान, माया, लोभ से पाप फलित होता है। पुण्य का उपार्जन ही पापों का प्रक्षालन अर्थात् धोना है।

चतुर्थ खण्ड– "अग्नि की परीक्षा चाँदी सी राख" अर्थात् अग्नि अपने ताप से जलाकर, चाँदी के समान चमकने वाली राख बना देती है। परीक्षा उत्तीर्ण करना, प्रावीण्य का परिचायक है। तप सम्पूर्ण कल्मष को भस्म कर पूज्य बना देता है।

इस प्रकार खण्डों के नामकरण वर्ण्य–विषय के आधार एवं ध्वन्यार्थ में सक्षम एवं सार्थक हैं।

छन्द–विधान– छन्द काव्य का संगीत है। छंद काव्य–शैली के रूप–विधान के साथ–साथ कृतिकार की अनुभूति पूर्ण भाव–दशा की अभिव्यक्ति के साधन भी हैं। "मूकमाटी" की रचना मुक्तक छन्द में हुई है। यत्र–तत्र तुकान्त और अतुकान्त छन्द–योजना दिखाई देती है। सामान्य रूप से भाव, भाषा, प्रसंग और शैली के अनुरूप छंद–योजना का प्रयोग हुआ है।

"मूकमाटी" अनुभूति पूर्ण भावों की अभिव्यक्ति है। अतएव इसमें यत्र–तत्र गेयता और लयात्मकता के दर्शन होते हैं। पाठक, यदि सस्वर पठन करे तो उसे संगीतात्मक आनन्द की अनुभूति हो सकती है। कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं, जो छंद–विधान के रूप हैं–

पंकज से नहीं पंक से घृणा करो अयि आर्य!
नर से नारायण बनो !समयोचित कर कार्य।। (पृष्ठ ५० –५१)

* * * * *

जय हो! जय हो! जय हो!
अनियत बिहार वालों की, नियमित विचार वालों की।
सन्तों की, गुणवन्तों की; सौम्य–शान्त–छविवन्तों की।। (पृष्ठ३१४–१५)

* * * * *

शरण चरण हैं आपके, तारण–तरण जहाज।

भव–दधि तट तक ले चलो, करुणाकर गुरुराज।। (पृष्ठ ३२५)

* * * * *

कलियाँ खुल खिल पड़ीं, पवन की हँसियों में।
छवियाँ घुल–मिल गईं, गगन की गलियों में।। (पृष्ठ २६३)

* * * * *

नयी उमंग, नये रंग
अंग–अंग में नयी तरंग
नयी ऊषा तो नयी ऊष्मा
नये उत्सव तो नयी भूषा
नये लोचन–समालोचन
नया सिंचन, नया चिंतन (पृष्ठ २६३)

* * * * *

सुख के बिन्दु से ऊब गया था यह।
दुःख के सिन्धु में डूब गया था यह।।

* * * * *

मेरा संगी संगीत है, सप्त अंगी रीत है।

* * * * *

मेरा सगी संगीत है, स्वस्थ जंगी जीत है। (पृष्ठ १४६, ४७)

"मूकमाटी" को सर्वथा अतुकान्त या मुक्त–छन्द में रची गयी काव्य–कृति कहना समीचीन प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि कृति में छन्द, लय, प्रवाह, सरसता एवं संगीतात्मकता के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। कृतिकार ने अपनी अन्य काव्य–कृतियों में वसंततिलका, मन्दाक्रान्ता, ज्ञानोदय, दोहा आदि छन्दों का प्रचुर प्रयोग किया है। इसलिए "मूकमाटी" पर भी छन्द–विधान का प्रभाव परिलक्षित होता है। कवि के कतिपय प्रिय छन्द उल्लेखनीय हैं, यथा–

दोहा–

नील–गगन में अधर हो, शोभित निज में लीन।
नील–कमल आसीन हो, नीलम से अति नील।।१।।
(समन्तभद्र की भद्रता, पृष्ठ ५१)

ज्ञानोदय–छन्द–

मनमाने कुछ तापस ऐसे, तप करते थे वनवासी।
पाप–रहित तुमको लख इच्छुक, तुम सम बनने अविनाशी।।
हम सबका श्रम विफल रहा यों, समझ सभी के विफल हुए।
शम–यम–दम मय सदुपदेश सुन, तव चरणन में सफल हुए।।४
(समन्तभद्र की भद्रता पृष्ठ ५३)

वसंततिलका–छन्द–

देही शुभाशुभ विकार विभावधारी,
है पुण्य–पापमय निश्चय से विकारी।
होता शुभाशुभ गोत्र सुनाम साता,
है पुण्य, शेष बस पाप किससे सुहाता।।३८।।
(द्रव्य–संग्रह पद्यानुवाद पृष्ठ ८३)

मन्दाक्रान्ता छन्द–

रागी–द्वेषी, जिनवर नहीं, ना किसी की अपेक्षा,
मेरे स्वामी। वर सुखद है, मार्ग तेरा उपेक्षा!

तो भी तेरी, वह निकटता, कर्महारी यहाँ है,
ऐसी भारी, विशद महिमा, दूसरों में कहाँ है ? २२ ।।

(एकीभाव स्तोत्र का पद्यानुवाद पृष्ठ ४४)

संगीतात्मकता और उसके अनुरूप प्रवाहमयी कोमलकान्त-पदावली, भावों की एकता, लयात्मकता "मूकमाटी" में भरपूर है। लय ही कविता के प्राण हैं। छन्दों की सृष्टि में लय प्रधान है। मुक्त छन्द होने पर भी कविता लय से मुक्त नहीं होती है। "मूकमाटी" के कतिपय अंश द्रष्टव्य हैं-

धा.........धिन्.........धिन्.........धा
धा.........धिन्.........धिन्.........धा
वेतन.........भिन्ना.........चेतन.........भिन्ना
ता.........तिन.........तिन.........ता
ता.........तिन.........तिन.........ता
का तन चिन्ता.......का........तन चिन्ता।

(५/८ मात्राओं का छंद, पृष्ठ ३०६ एवं ७३, २९५, ९६)

गेय, लयात्मक पद क्रमशः १७९, २०९, २२९, २६३, ६४, ३१४, १५, ३५९, और ४५६ पृष्ठों पर देखे-पढ़े जा सकते हैं।

"मूकमाटी" में सन्त-कवि ने साधनापरक सहज अनुभूतियों को सरस अभिव्यक्ति दी है। छन्द-शास्त्र या काव्य शास्त्र-सृजन कवि का प्रयोजन नहीं है। फिर भी "मूकमाटी" में छंद-विधान का आंशिक अनुपालन होता दिखाई देता है। साधक कवि जब सांसारिकता के बन्धनों में बँधकर नहीं रहना चाहता है, तो उसे छन्दों के बन्धनों में बाँधना या छन्दों के विधान से आँकना, हमारी अल्पज्ञता ही नहीं है तो और क्या है ? जबकि स्वयं कवि कहता है-

यहाँ
बन्धन रुचता किसे ?
मुझे भी प्रिय है स्वतन्त्रता
तभी तो
किसी के भी बन्धन में
बँधना नहीं चाहता मैं
न ही किसी को
बाँधना चाहता हूँ। (पृष्ठ ४४२)

छन्द-विधान कवि का कर्म नहीं है। मुक्ति पथ का पथिक स्वयं, जब मानव-जाति के लिए उन्मुक्त पथ का प्रदर्शक है, तो छन्द-शास्त्र को भी नये-नये छन्दों का सृजन कर नयी उपलब्धि करा सकता है। यदि ऐसा कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सन्त-कवि ने नवीन छन्दों की सृष्टि कर, छन्द-शास्त्र को नवीन आयाम प्रदान किये हैं। कतिपय नवीन छन्दों के उदाहरण दृष्टव्य हैं, भले ही, कृतिकार ने उन छन्दों का नामकरण न किया हो, क्योंकि छन्द-शास्त्र तो कवि का प्रयोजन ही नहीं है। ऐसे अनेक समान मात्राओं वाले छन्दों में गेयता, लयात्मकता और संगीत के स्वर झंकृत होने लगते हैं। "मूकमाटी" में सममात्रिक, अर्द्ध सम मात्रिक एवं विषम मात्रिक छन्दों के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं-

सममात्रिक छन्दः-

वही नशा है, वही दशा है।
काँप रही अब, दिशा-दिशा है।।

(८/८ मात्राएँ पृ. ४५६ तथा पृष्ठ ४४-४५ पर)

वही गात है, वही माथ है।
वही पाद है, वही हाथ है।।
घात-घात में, वही साथ है।

गाल वही है, अधर वही है।।

(८/८ मात्रा में पृष्ठ ४५६)

दया का कथन निरा है।
दया का वतन निरा है।।
दाह का रोग हुआ है।
आह का योग हुआ है।।

(१३/१३ मात्रा में पृष्ठ ३९०)

इसी प्रकार के उदाहरण पृ.१०२,१८३,२८७,४७४ पर देखे जा सकते हैं।

भव सागर के कूलों की,
शिव आगर के चूलों की,
सब कुछ सहते धीरों की,
विधि मल धोते नीरों की। (१४/१४ मात्रा में पृष्ठ ३१५)

इसी प्रकार के उदाहरण क्रमशः पृ.७, १०९, २६३, ४७४–७५ पर दृष्टव्य हैं।

नयी पलक में नया पुलक है,
नयी ललक में नयी झलक है,
नये भवन में नये छुवन हैं,
नये छुवन में, नये स्फुरण हैं।

(१६/१६ मात्राएँ पृष्ठ २६४)

इसी प्रकार के उदाहरण पृ ८४, २२९, ३७३, ४५६ पर देखे जा सकते हैं।

निशा का, अवसान हो रहा है।
उषा की, अब शान हो रही है।।

(१७/१७ मात्राएँ पृष्ठ १)

निर्दोषों में दोष लगाते हैं,
सतोषों में रोष जगाते हैं,
वन्द्यो की भी निन्दा करते हैं,
शुभ कर्मों को अन्धे करते हैं।

(१८/१८ मात्राएँ पृष्ठ २२९)

भोग पड़े हैं यहीं, भोगी चला गया।
योग पड़े हैं यहीं, योगी चला गया।।

(२१/२१ मात्राएँ पृष्ठ १८०)

यहाँ वेदना किसकी, वह कौन प्राण है ?
यहाँ प्रेरणा किसकी, वह कौन त्राण है ?

(२२/२२ मात्राएँ पृष्ठ २१० तथा ६०)

जब आँखे आतीं हैं, तो दुःख देती हैं।
जब आँखें जाती हैं, तो दुःख देती हैं।।

(२३/२३ मात्राएँ पृष्ठ ३५९)

प्रतिकार की पारणा, छोड़नी होगी बेटा!
अतिचार की धारणा, तोड़नी होगी बेटा।

(२५/२५ मात्राएँ पृष्ठ १२ तथा ८४, ११५ पर)

चेतन की इस सृजन–शीलता का भान किसे है ?
चेतन की इस द्रवण–शीलता का ज्ञान किसे है ?

(२७/२७ मात्राएँ पृष्ठ १६)

मेरा जलाना शीतल–जल की याद दिलाता है।

मेरा जलाना कटु–काजल का स्वाद दिलाता है।।

(२६/२६ मात्राएँ पृष्ठ २८३)

आमद कम खर्चा ज्यादा, लक्षण है मिट जाने का।
कूवत कम गुस्सा ज्यादा, लक्षण है पिट जाने का।।

(२८/२८ मात्राएँ पृष्ठ १३५ तथा २४५–२४५)

जब हवा काम नहीं करती, तब दवा काम करती है।
जब दवा काम नहीं करती, तब दुआ काम करती है।।

(२९/२९ मात्राएँ पृष्ठ २४१)

पात्र के बिना कभी, पानी का जीवन टिक नहीं सकता।
पात्र के बिना कभी, प्राणी का जीवन टिक नहीं सकता।।

(३०/३० मात्राएँ पृष्ठ ३३५)

आचरण के सामने आते ही, प्रायः चरण थम जाते हैं।
आचरण के सामने आते ही, प्रायः नयन नम जाते हैं।।

(३३/३३ मात्राएँ ४६२)

कभी किसी दशा पर, इसकी आँखों में करुणाई छलक आती है।
कभी किसी दशा पर, इसकी आँखों में अरुणाई झलक आती है।।

(३७/३७ मात्राएँ पृष्ठ १५१)

अर्द्ध–सम–मात्रिक छन्दः–

ऐसे छन्द, जिनमें प्रथम एवं तृतीय तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में समान मात्रायें हैं। इन छन्दों में लय, प्रवाह एवं सरसता निरन्तर बनी हुई है। कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं–

मृदुतम मरहम,
बनी जा रही है।
करुणा रस में,
सनी जा रही है।।

(प्रथम–तृतीय चरण ८ मात्राएँ, द्वितीय–चतुर्थ १० मात्राएँ, पृष्ठ ३५ तथा ९३ भी)

शीत–धरम से,
भय–भीत होते हैं।
नीत करम से,
विपरीत होते हैं।।

(प्रथम–तृतीय चरण ८ मात्राएँ, द्वितीय–चतुर्थ चरण ११ मात्राएँ, पृष्ठ ९३)

अब पीने को,
जल–तत्त्व की अपेक्षा नहीं।
अब जीने को,
बल–सत्व की अपेक्षा नहीं।।

(प्रथम–तृतीय चरण ८ मात्राएँ, द्वितीय–चतुर्थ चरण १५ मात्राएँ पृष्ठ ८५)

कभी–कभी शूल भी,
अधिक कोमल होते हैं, फूल से भी।
कभी–कभी फूल भी,
अधिक कठोर होते हैं, शूल से भी।।

(प्रथम–तृतीय चरण ११ मात्राएँ, द्वितीय–चतुर्थ चरण २० मात्राएँ पृष्ठ ९९)

क्षेम–कुशल क्षेत्र पर,
प्रलय की बरसात है यह।
प्रेम–वत्सल शैल पर,

अदय का पपिपात है यह।।

(प्रथम–तृतीय चरण १२ मात्राएँ, द्वितीय–चतुर्थ चरण–१४ मात्राएँ पृष्ठ ११५)

कर्तृत्व–बुद्धि से,
मुड़ गया है वह,
कर्तव्य–बुद्धि से,
जुड़ गया है वह।।

(प्रथम–तृतीय चरण में १० मात्राएँ, द्वितीय–चतुर्थ ९ मात्राएँ)

रस–रसायन की यह,
ललक और चखन,
पर–परायन की यह,
परख और लखन।

(प्रथम–तृतीय चरण ११ मात्राएँ, द्वितीय–चतुर्थ ९ मात्राएँ पृष्ठ१३९ तथा पृष्ठ १४६)

बोल की काया वह,
अवधि से रची है ना!
ढोल की माया वह,
परिधि से बची है ना!!

(प्रथम एवं तृतीय चरण ११ मात्राएँ, द्वितीय एवं चतुर्थ १२ मात्राएँ पृष्ठ ११८)

तन का खेद टल कर,
चूर होता है पल में।
मन का भेद धुल कर,
दूर होता है पल में।।

(प्रथम–तृतीय चरण ११ मात्राएँ, द्वितीय–चतुर्थ १३ मात्राएँ, पृष्ठ १४५)

सुख के बिन्दु से,
ऊब गया था यह।
दुख के सिन्धु में,
डूब गया था यह।।

(प्रथम–तृतीय चरण ९ मात्राएँ, द्वितीय चतुर्थ १० मात्राएँ, पृष्ठ १४६)

गगन का प्यार कभी,
धरा से हो नहीं सकता।
मदन का प्यार कभी,
जरा से हो नहीं सकता।।

(प्रथम–तृतीय चरण ११ मात्राएँ, द्वितीय चतुर्थ चरण १४ मात्राएँ पृष्ठ३५३)

हाथ हिल नहीं सकते,
. . थम गए हैं।
पाद चल नही सकते
. . . जम गए हैं।।

(प्रथम–तृतीय चरण १२ मात्राएँ, द्वितीय–चतुर्थ चरण ७ मात्राएँ, पृष्ठ २१३)

शरण चरण हैं आपके,
तारण–तरण जहाज।
भव–दधि तट तक ले चलो,
करुणाकर गुरु राज।।

(प्रथम–तृतीय चरण १३ मात्राएँ, द्वितीय–चतुर्थ चरण ११ मात्राएँ, पृष्ठ ३२५)

जिसने मरण को पाया है,

उसे जनन को पाना है।
जिसने जनन को पाया है,
उसे मरण को पाना है।।

(प्रथम–तृतीय चरण १५ मात्राएँ, द्वितीय–चतुर्थ १४ मात्राएँ, पृष्ठ १८१)

पाप–निधि का प्रतिनिधि बना,
प्रतिशोध–भाव का वमन हो रहा है।
पुण्य–निधि का प्रतिनिधि बना,
बोध–भाव का आगमन हो रहा है।।

(प्रथम–तृतीय चरण १४ मात्राएँ, द्वितीय–चतुर्थ चरण २० मात्राएँ, पृष्ठ१०६)

योग के काल में भोग का होना,
रोग का कारण है।
भोग के काल में रोग का होना,
शोक का कारण है।।

(प्रथम–तृतीय चरण १९ मात्राएँ, द्वितीय–चतुर्थ चरण ११ मात्राएँ, पृष्ठ ४०७)

कहाँ से यहाँ तक,
यहाँ से कहाँ तक ?
कब से अब तक,
अब से कब तक ?

(प्रथम–द्वितीय चरण १० मात्राएँ, तृतीय–चतुर्थ चरण ८ मात्राएँ, पृष्ठ १०३)

एक का जीवन, मृतक–सा लगता है,
कान्ति मुक्त शव है।
एक का जीवन, अमृत–सा लगता है,
कान्ति युक्त शिव है।।

(प्रथम–तृतीय चरण २० मात्राएँ, द्वितीय–चतुर्थ चरण में १० मात्राएँ पृष्ठ ८४)

कुम्भ के विमल दर्पण में,
सन्त का अवतार हुआ है।
कुम्भ के निखिल अर्पण में,
सन्त का आभार हुआ है।।

(प्रथम–तृतीय चरण में १४ मात्राएँ, द्वितीय–चतुर्थ चरण में १५ मात्राएँ पृष्ठ३५४–५५)

नया मंगल तो नया सूरज
नया जंगल तो नयी भू–रज।
नयी मिति तो नयी मति,
नयी चिति तो नयी यति।।

(प्रथम–द्वितीय चरण में १६ मात्राएँ, तृतीय–चतुर्थ चरण में १२ मात्राएँ पृष्ठ २६३)

क्या दान–संरक्षण हेतु
धर्म ही बेचा जा रहा है ?
क्या धन–संवर्धन हेतु,
शर्म ही बेची जा रही है ?

(प्रथम–तृतीय चरण में १३ मात्राएँ, द्वितीय–चतुर्थ में १६ मात्राएँ पृष्ठ २०१)

नया योग है, नया प्रयोग है,
नये–नये ये, नयोपयोग हैं,
नयी कला ले हरी लसी है,
नयी सम्पदा वरीयसी है।

(प्रथम द्वितीय चरण १७ मात्राएँ, तृतीय–चतुर्थ चरण १६ मात्राएँ पृष्ठ २६४)

विषम मात्रिक छन्द–

ऐसे छन्दों में अलग–अलग चरणों में मात्राओं की असमानता है किन्तु लय और प्रवाह में व्यवधान नहीं होने पाया है।

कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं–

माटी के प्राणों में जा, पानी ने वहाँ,
नव प्राण पाया है।
ज्ञानी के पदों में जा, अज्ञानी ने जहाँ,
नव–ज्ञान पाया है।।

(प्रथम चरण २३ द्वितीय–चतुर्थ १२ तृतीय चरण २४ मात्राएँ, पृष्ठ ८९)

नदी को पार करना ही है,
कुम्भ के भाग में क्या ?
विकलता–शून्यता लिखी है,
कुम्भ के त्याग में क्या ?

(प्रथम चरण १६ द्वितीय–चतुर्थ १२ तथा तृतीय १५ मात्राएँ, पृष्ठ ४४१)

यह किसकी योग्यता
वह कौन उपादान है ?
यह किसकी सहयोगिता,
वह कौन अवदान है ?

(प्रथम–तृतीय चरण ११/१३, द्वितीय–चतुर्थ चरण १३/१२ मात्राएँ, पृष्ठ २१०)

गीतकाल में,
कब थे दीक्षित भी।
शिक्षित कब थे,
प्रशिक्षित भी

(प्रथम–तृतीय चरण ८, द्वितीय १०, चतुर्थ ७ मात्राएँ, पृष्ठ ९१)

पलाश की हँसी–सी साड़ी पहनी,
गुलाब की आभा फीकी पड़ती जिससे।
लाल पगतली वाली लाली–रची,
पद्मिनी की शोभा सकुचाती है जिससे।।

(प्रथम चरण २०, द्वितीय २२, तृतीय १९, चतुर्थ २३ मात्राएँ, पृष्ठ २००)

सलिल की अपेक्षा,
अनल को बाँधना कठिन है।
अनल की अपेक्षा अनिल को बाँधना और कठिन।।

(प्रथम–तृतीय चरण १० मात्राएँ, द्वितीय १५, चतुर्थ १६ मात्राएँ, पृष्ठ ४७२)

संहार की बात मत करो
संघर्ष करते जाओ!
हार की बात मत करो,
उत्कर्ष करते जाओ!

(प्रथम चरण में १५ मात्राएँ, तृतीय–द्वितीय–चतुर्थ चरण १३/१३ मात्राएँ पृष्ठ ४३२)

एक औरों का दम लेता है,
बदले में, मद भर देता है।
एक औरों में दम भर देता है,
तत्काल फिर निर्मद कर देता है।

(प्रथम चरण १७, तृतीय १९, द्वितीय १६, चतुर्थ १९ मात्राएँ पृष्ठ १०२)

दाँत मिले तो चने नहीं,
चने मिले तो दाँत नहीं।
और दोनों मिले तो,
पचाने की आँत नहीं।।

(प्रथम चरण १४, द्वितीय १४, तृतीय १२, चतुर्थ १३ मात्राएँ, पृष्ठ ३१८)

शैली–

कवि अपने विचारों, भावों और अनुभवों को अभिव्यक्त करने के लिए, जिस आकर्षक, मोहक, रमणीय और प्रभावोत्पादक कथन–पद्धति का प्रयोग करता है, उसे शैली कहते हैं। "शैली" उस कलापूर्ण साधन का नाम है, जो कृति के समस्त सरस तत्त्वों की अभिव्यक्ति में अभिनव और उचित शक्ति का संचार करता है। वास्तव में, शैली ही कवि/लेखक के कौशल का प्रकाश है, उसमें संस्कार, चरित्र, विचार और भावों की स्पष्ट झलक प्रतिबिम्बित होती है। शैली का सम्बन्ध मानव की ज्ञानेन्द्रियों से होता है। "मूकमाटी" में सन्त–कवि की संस्कृत–निष्ठ–शैली के दर्शन तो होते ही हैं; इसके अतिरिक्त अन्य शैलियों में भी भावाभिव्यक्ति की गयी है। कतिपय शैलियों के उदाहरण दृष्टव्य हैं–यथा–

(१) वर्णनात्मक–शैली–

लघु–गुरु अणु महा
त्रिकोण–चतुष्कोण वाले
तथा पाँच पहलू वाले
भिन्न–भिन्न आकार वाले
भिन्न–भिन्न भार वाले
गोल–गोल सुडौल ओले
क्या कहें, क्या बोलें
जहाँ देखो वहाँ ओले
सौर–मण्डल भर गया। (पृष्ठ २४८)

(इसी प्रकार के अन्य उदाहरण क्रमशः पृ.२२९, ३००, ३२६, ३८०, ४४४ पर देखे जा सकते हैं)

(२) व्याख्यापरक–शैली–

वासना की जीवन–परिधि
अचेतन है.... तन है
दया–करुणा निरवधि है
करुणा का केन्द्र वह
संवेदन–धर्मा–चेतन है
पीयूष का केतन है।

* * * * *

वह अन्ध ही होगा
विषयों का दास
इन्द्रियों का चाकर
और
मन का गुलाम
मदान्ध होगा कहीं। (पृष्ठ ३९)

(अन्य उदाहरण पृष्ठ ३८, ४७–४८, १११, ४६१ आदि)

(३) विवरणात्मक-शैली-

कोई ताम्र-कलश ले
कोई आम्र-फल ले
कोई पीतल-कलश ले
कोई सीता-फल ले
कोई रामफल ले
कोई जामफल ले
कोई कलश पर कलश ले
कोई सर पर कलश ले
कोई अकेला
कर में ले केला
कोई खाली हाथ ही
कोई थाली साथ ले।
विशेष बात यह है कि
सब विनत माथ है
और बार-बार सुदूर तक
दृष्टिपात करते
अतिथि की प्रतीक्षा कर रहे हैं। (पृष्ठ ३१४)

(अन्य उदाहरण पृष्ठ ९४, ४१८, ४३४, ४५० पर देखे जा सकते हैं)

(४) तुलनात्मक-शैलीः-

कलि, काल समान है
अदय-निलय रहा
अति क्रूर होता है
और सत्
कलिका लता समान है
अतिशय सदय रहा है
मृदु-पूर होता है।
कलि की आँखों में
भ्रान्ति का तमस ही
गहराता है सदा
और
सत् की आँखों में
शान्ति का मानस ही
लहराता है सदा। (पृष्ठ८३-८४)

(अन्य उदाहरण पृष्ठ ६२, ९२, १४६, २७१-७२, ३६३, ३८८ पर)

(५) प्रश्नात्मक-शैलीः-

स्थूल है,
रूपवती रूप-राशि है वह
पर पकड़ में नहीं आती।
छुवन से परे है वह
प्रभाकर को छोड़कर
प्रभु के अनुरूप ही
सूक्ष्म स्पर्श से रीता

रूप हुआ है किसका ?
... धूप का। (पृ.७९)

(अन्य उदाहरण पृ.२९, १४२, २८७)

(६) दृष्टान्त या उदाहरण-शैलीः-

गुणों के साथ
अत्यन्त आवश्यक है
दोषों का बोध होना भी,
किन्तु
दोषों से द्वेष रखना
दोषों का विकसन है
और
गुणों का विनशन है;
काँटों से द्वेष रख कर
फूल की गन्ध-मकरन्द से
वंचित रहना
अज्ञता ही मानी है,
और
काँटों से अपना बचाव कर
सुरभि-सौरभ का सेवन करना
विज्ञता की निशानी है
सो....
विरलों में ही मिलती है! (पृ.७४)

(कतिपय उदाहरण पृ.१५,९३,९८, २७२-२७३ पर भी देखे जा सकते हैं।)

(७) मनोवैज्ञानिक-शैलीः-

अन्ध-कूप में पड़ी हूँ मैं
कुरूपता की अनुभूति से
कूप-मण्डूक-सी..
स्थिति है मेरी।
गति, मति और स्थिति
सारी विकृत हुई हैं
स्वरूप-स्वभाव ज्ञात कैसे हो ?
ऊपर से प्रेषित हो
मुझ तक
एक किरण भी तो नहीं आती।

(पृष्ठ ६७, २७७, तथा अन्य पृष्ठ ४३१-३२ आदि)

(८) सम्बोधनात्मक-शैलीः-

"अरे देहिन्!
द्युति-दीप्त-संपुष्ट देह
जीवन का ध्येय नहीं है,
देह-नेह करने से ही
आज तक तुझे
विदेह-पद उपलब्ध नहीं हुआ।
दयाहीन दुष्टों का

दयालीन शिष्टों पर
आक्रमण होता देख–
तरवारों का वार दुर्वार है
इस वार से परिवार को बचाना भी
अनिवार्य है, आर्यों का आद्य कार्य।" (पृष्ठ ४२८–२९)

* * * * *

"ओरी कलशी!
कहाँ दिख रही है तू!
कल–सी ?
केवल आज कर रही है
कल की नकल–सी !
तू रही न कलशी
कल–सी!

* * * * *

कहाँ दिख रही है तू
कल–सी !" (पृष्ठ ४१७, तथा अन्य पृष्ठ ४९–५०, ५६–५७, १३, ७)

(९) आत्मपरक–शैली:–

स्वयं पतिता हूँ
और पातिता हूँ औरों से
अधम पापियों से
पद–दलिता हूँ माँ!
सुख–मुक्ता हूँ
दुःख–युक्ता हूँ
तिरस्कृत त्यक्ता हूँ माँ। (पृष्ठ ४)

* * * * *

इस बात को हम स्वीकारते हैं कि
दूसरों की पीड़ा–शल्य में
हम निमित्त अवश्य हैं
इसी कारण हम शूल हैं
तथापि
सदा हमें शूल के रूप में ही देखना
बड़ी भूल है
कभी–कभी शूल भी
अधिक कोमल होते हैं
.... फूल से भी
और, कभी–कभी फूल भी
अधिक कठोर होते हैं
शूल से भी।

* * * * *

फिर तुम ही बताओ
हमें शूल कहाँ रहे ?
वे फूल कहाँ रहे ?

(पृष्ठ ९९–१००)

(१०) समीक्षात्मक शैली- (मूल्यांकन परक-शैली)

क्या दर्शन और अध्यात्म
एक जीवन के दो पद हैं ?

* * * * *

मुक्ति किससे मिलती है ?
तृप्ति किससे मिलती है ?

* * * * *

दर्शन का स्रोत मस्तक है
स्वस्तिक से अंकित हृदय से
अध्यात्म का झरना झरता है।
दर्शन के बिना अध्यात्म जीवन
चल सकता है, चलता ही है
पर हाँ।
बिना अध्यात्म, दर्शन का दर्शन नहीं।

* * * * *

अध्यात्म स्वाधीन नयन है
दर्शन पराधीन उपनयन
दर्शन में दर्श नहीं शुद्ध-तत्त्व का
दर्शन के आस-पास ही घूमती है
तथता और वितथता
यानी
कभी सत्य-रूप कभी असत्य रूप
होता है दर्शन, जबकि
अध्यात्म सदा सत्य, चिद्रूप ही
भास्वत होता है।
स्वस्थ ज्ञान ही अध्यात्म है।
अनेक संकल्प-विकल्पों में
व्यस्त जीवन दर्शन का होता है।
बहिर्मुखी या बहुमुखी प्रतिभा ही
दर्शन का पान करती है,
अन्तर्मुखी, बन्दमुखी चिदाभा
निरंजन का गान करती है।
दर्शन का आयुध शब्द है-विचार
अध्यात्म निरायुध होता है
सर्वथा स्तब्ध-निर्विचार।
एक ज्ञान है, ज्ञेय भी
एक ध्यान है, ध्येय भी। (पृष्ठ २८७-८९) तथा अन्यत्र (पृष्ठ ३५७, ३५९)

इस प्रकार "मूकमाटी" का कला-पक्ष एवं भाव-पक्ष दोनों समृद्ध हैं। शिल्प-विधान से सम्बद्ध अगणित नवीन एवं मौलिक-प्रयोग, प्रकृति-निरूपण की प्रणालियाँ, नामकरण, सर्ग-योजना, भाषा-शैली, अलंकार-योजना, छन्द-विधान आदि "मूकमाटी" में परिलक्षित होते हैं, जो शिल्प-तत्त्व को व्यंजित करते हैं।

अलंकार–निरूपण–

काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्म को "अलंकार" कहा गया है। अलंकार में दो शब्द हैं–अलं का अर्थ होता है–भूषण और कार का अर्थ है–करने वाला। अर्थात् जो अलंकृत करे या भूषित करे, वह अलंकार है। अलंकारों के प्रयोग से काव्य में चार–चाँद लग जाते हैं। आचार्यों के अनुसार अलंकार को काव्य की आत्मा कहा गया है। काव्य के सौन्दर्य की वृद्धि के लिए अलंकारों की आवश्यकता पड़ती है।

आचार्य केशव की यह उक्ति–भूषण बिन न बिराजइ, कविता, बनिता मित्र/"मूकमाटी" में अनायास ही चरितार्थ हो गयी है। कृति में शब्दालंकारों और अर्थालंकारों की अनुपम छटा दर्शनीय है। सानुप्रास की छटा तो यत्र–तत्र–सर्वत्र ही नजर आती है।रचना में, अलंकारों में कहीं भी कृत्रिमता नहीं है। वे रमणीय, सरस और काव्य के कला–पक्ष की अभिवृद्धि में सहायक हैं। कृतिकार ने अलंकारों का प्रयोग केवल काव्य–सौन्दर्य की वृद्धि के लिए ही नहीं किया अपितु अपनी गूढ़–सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए किया है। अलंकारों के साथ मानवीयकरण, ध्वन्यार्थ–व्यंजना आदि का सफल प्रयोग हुआ है। कतिपय अलंकारों के उदाहरण दृष्टव्य हैं–

उपमा अलङ्कार–

हरियाली को हरने वाली
मृग–मरीचिका से भरी
सुदूर तक फैली मरुभूमि में
सागर–मिलन की आस भर ले
बलहीन सपाट–तट वाली
सरकती पतली–सरिता–सी। (पृ. ३५१)

* * * * *

गौर वर्ण के युगल–करों में
माटी का कुम्भ शोभा पा रहा है,
कनकाभरण में जड़े हुए नीलम–सा। (पृ. ३३४)

उत्प्रेक्षा अलङ्कार–

बाल–भानु की भास्वर आभा
निरन्तर उठती चंचल लहरों में
उलझती हुई–सी लगती है/ कि
गुलाबी साड़ी पहने/ मदवती अबला–सी
स्नान करती–करती/ लज्जावश सकुचा रही है। (पृष्ठ ४७९)

* * * * *

लज्जा के घूँघट में डूबती–सी कुमुदिनी
प्रभाकर के कर–छुवन से बचना चाहती है वह,
अपनी पराग को,–सराग–मुद्रा को–
पाँखुरियों की ओट देती है। (पृष्ठ २)
आषाढ़ी घनी गरजती
भीतिदा मेघ घटाओं–सी
कज्जल–काली धूम की गोलियाँ
अविकल उगलने लगा अवा। (पृ. २७८)

* * * * *

रुधिर में सनी–सी, भय की जनी
ऊपर उठी–तनी भृकुटियाँ

लपलपाती रसना बनी, मानो
आग की बूँदें टपकाती हो, घनी कहीं। (पृ. २३३)

यमक अलङ्कार-

कभी-कभी खुशी-हँसी
कभी निशि मषि दिखी
कभी सुरभि कभी दुरभि
कभी सन्धि दुरभिसन्धि
कभी आँखें कभी अन्धी
बन्धन-मुक्त कभी बन्दी
कभी-कभी मधुर भी वह
मधुरता से विधुर दिखा
कभी-कभी बन्धुर भी वह
बन्धुरता से विकल दिखा
बन्धु कभी बन्धु-विधुर। (पृ. १८३)

रूपक अलङ्कार-

इधर धरती का दिल
दहल उठा, हिल उठा है,
अधर धरती के कँप उठे हैं
धृति नाम की वस्तु वह
दिखती नहीं कहीं भी। (पृ. २६१)

* * * * *

स्वयं रज-विहीन सूरज ही,
सहस्रों करों को फैलाकर
सुकोमल किरणागुलियों से
नीरज की बंद पाँखुरियों-सी
शिल्पी की पलकों को सहलाता है। (पृ. २६५)

अन्योक्ति अलङ्कार-

अरे पथ-भ्रष्ट बादलो!
बल का सदुपयोग किया करो,
छल का न उपभोग किया करो, !
छल-बल से,
हल नहीं निकलने वाला कुछ भी।
कुछ भी करो या न करो
मात्र दल का अवसान ही हल है! (पृ. २६१)

* * * * *

जो कृतघ्न /कलह-कर्म-मग्न बने हैं,
हैं विघ्न के साक्षात् अवतार
संवेगमय जीवन के प्रति
उद्वेग-आवेग प्रदर्शित करते हैं
और जिनका जीवन भविष्य भयंकर
शुभ-भावों का भग्नावशेष मात्र। (पृ. २६०)

अनुप्रास अलङ्कार-

किसलय ये किसलिए
किस लय में गीत गाते हैं ?
किस वलय में से आ
किस वलय में क्रीत जाते हैं ?
और
अन्त-अन्त में श्वास, इनके
किस लय में रीत जाते हैं!
किसलय ये किसलिए
किस लय में गीत गाते हैं। (पृ. १४१-४२)

प्रश्नालङ्कार-

चेतन की इस/ सृजन-शीलता का/ भान किसे है ?
चेतन की इस/ द्रवण शीलता का/ ज्ञान किसे है ?
इसकी चर्चा भी/ कौन करता है रुचि से ?
कौन सुनता है मति से ?
और इसकी /अर्चा के लिए किसके पास समय है ?
आस्था से रीता जीवन यह धार्मिक वतन है माँ! (पृ. १६)

श्लेषः-

बादल दल छँट गये हैं,
काजल-पल कट गये हैं,
वरना, लाली क्यों फूटी है,
सुदूर.... प्राची में (पृ. ४४०)

* * * * *

"मर हम मरहम बने" (पृ. १७४)

* * * * *

"मैं दो गला" (पृ. १७५)

सन्देह अलङ्कार-

सत्य का आत्म-समर्पण
और वह भी
असत्य के सामने ?
हे भगवन्!
यह कैसा काल आ गया,
क्या असत्य शासक बनेगा अब ?
क्या सत्य शासित होगा ?
हाय रे जौहरी के हार में
आज हीरक-हार की हार। (पृ. ४६९)

लाटानुप्रास -

इनका प्रयास चलता है सर्वप्रथम
प्रभाकर की प्रभा को प्रभावित करने का।
प्रभाकर को बीच में ले
परिक्रमा लगाने लगीं।
कुछ ही पलों में

प्रभा तो प्रभावित हुई,
परन्तु,
प्रभाकर का पराक्रम वह
प्रभावित–पराभूत नहीं हुआ। (पृ. २००)

नारी–विषयक नवीन परिकल्पन –

भारतीय संस्कृति का मूल–मन्त्र–"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"–"मूकमाटी" महाकाव्य में सस्वर हो उठा है। नारी एक शक्ति है। वह पुरुष की प्रेरणा और सहचरी है। उसमें सागर जैसी गम्भीरता, आकाश जैसी विशालता और पृथ्वी जैसी क्षमाशीलता समाविष्ट है। उसके अनेक रूप हैं। वह पूज्या है। भारतीय साहित्य में नारी–महिमा का विशद् वर्णन मिलता है। जैन–साहित्य भी नारी–महिमा से अछूता नहीं है।

हिन्दी–साहित्य में तो नायिका–प्रधान (नारी–प्रधान) महाकाव्यों तक का सृजन हुआ है। कामायनी और साकेत महाकाव्य नायिका–प्रधान ही हैं जो हिन्दी–जगत् में अनुपम एवं अत्यन्त लोकप्रिय हैं। अन्य अनेक काव्य–ग्रन्थ नारी–चरित्र को उद्घाटित करने के लिए पृथक्–पृथक् लिखे गये हैं।

नारी–महिमा की कतिपय उक्तियाँ निम्नानुसार हैं, यथा–

नारी निन्दा न करो, नारी नर की खान।
नारी ही तैं उपज्यै, राम–भीम, हनुमान।।

कविवर जयशंकर प्रसाद ने "कामायनी" महाकाव्य में नारी के सन्दर्भ में लिखा है–

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास–रजत–नग–पग तल में।
पीयूष स्रोत–सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।।

* * * * *

भूल गये तुम पुरुषत्व मोह में,
कुछ सत्ता है नारी की।
समर सता ही सिद्धान्त बनी,
अधिकृत और अधिकारी की।।

राष्ट्र–कवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में–

अबला जीवन हाय, तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध, और आँखों में पानी।।

सन्त–कवियों ने नारी के सत् और असत् दोनों रूपों का समान विवेचन किया है। सन्त कबीर ने लिखा है–

–"हरि जननी मैं बालक तोरा, काहे न औगुन बकसहु मोरा"।
सन्त गोस्वामी तुलसीदास ने नारी के विषय में लिखा है–
ढोल, गवाँर शूद्र पशु नारी,
सकल ताड़ना के अधिकारी।

साथ ही, नारी के आठ अवगुणों का विवेचन करते हुए लिखा है–

नारि स्वभाव सत्य कवि कहई,/ औगुण आठ सदा उर रहई।।
साहस, अनृत, चपलता, माया,/ भय, अविवेक, अशोच, अदाया।।

* * * * *

निज प्रतिबिम्ब बरुक गहिजाई,/ जानि न जाई नारी गति भाई।

* * * * *

राखिय नारियदपि उर माहीं,/ युवती, शास्त्र नृपति बस नाहीं। आदि-आदि।

ऐसा भी कहा जाता है कि जब पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं तो वह महान् बन जाता है और जब नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं तो वह कुल्टा बन जाती है।

जैन-धर्म में नारी के विषय में-"संसार में विष-बेल नारी, तज गये योगीश्वरा"-जैसी उक्ति भी प्रचलित है। सन्त-कवि विद्यासागरजी ने आज नवीन दृष्टिकोण से नारी-विषयक अवधारणा को प्रतिपादित किया है। जो सामायिक, वैज्ञानिक एवं स्तुत्य है। नारी के अनेक रूपों के चित्रण में आचार्यश्री की शब्द-अर्थान्वेषिणी-दृष्टि चमत्कृत हो उठी है।

अर्द्ध-शतक से भी अधिक ऐसे शब्द संकलित किये जा सकते हैं, जिनकी अर्थ-विपर्यय द्वारा नयी-नयी सार्थक व्युत्पत्ति प्रस्तुत की गयी है। कतिपय शब्द यहाँ दृष्टव्य हैं-

युग के आदि में इसका नामकरण हुआ है कुम्भकार।
"कु" यानी धरती
और "भ" यानी भाग्य-
यहाँ पर जो
भाग्यवान् भाग्य विधाता हो कुम्भकार कहलाता है। (पृ. २८)

* * * * *

मेरा नाम सार्थक हो प्रभो!
यानी "गद्" का अर्थ है रोग
"हा" का अर्थ है हारक
मैं सबके रोगों का हन्ता बनूँ, बस। (पृ. ४०)

* * * * *

"राही" बनना ही तो, "हीरा" बनना है।
स्वयं राही शब्द ही, विलोम रूप से कह रहा है-
रा........ही........ही......रा...... ।(पृ. ५७)

* * * * *

तन और मन को /तप की आग में /तपा-तपा कर
जला-जला कर राख करना होगा
यतना घोर करना होगा
तभी कहीं चेतन आत्मा /खरा उतरेगा।
"खरा" शब्द भी स्वयं विलोम रूप से कह रहा है-
राख बने बिना खरा-दर्शन कहाँ ?
रा......ख......ख.......रा..... ।(पृ. ५७)

* * * * *

धरती शब्द का भी भाव
विलोम रूप से यही निकलता है
ध......र.....ती.....ती......र.....ध।
यानी /जो तीर को धारण करती है,
या शरणागत को तीर पर धरती है,
वह धरती कहलाती है। (पृ. ४५२)
"ध" के स्थान पर, "थ" के प्रयोग से तीरथ बनता है शरणागत को तारे सो तीरथ।

* * * * *

कला शब्द स्वयं कह रहा है-

"क" यानी आत्मा-सुख है,
"ला" यानी लाना-देता है,

कोई भी कला हो
कला मात्र से जीवन में
सुख-शान्ति-सम्पन्नता आती है। (पृ. ३९६)

* * * * *

"नि" यानी निज में ही
"यति" यानी यतन-स्थिरता है
अपने में लीन होना ही नियति है
निश्चय से यही यति है और,
"पुरुष" यानी आत्मा परमात्मा है,
"अर्थ" यानी प्राप्तव्य प्रयोजन है,
आत्मा को छोड़कर
सब पदार्थों को विस्मृत करना ही,
सही पुरुषार्थ है। (पृ. ३४९)

नारी के विविध रूप –

आचार्य श्री विद्यासागरजी के शब्दों में–

भीरु "स्त्री जाति की कई विशेषताएँ हैं,
जो आदर्श रूप हैं पुरुष के सम्मुख"।
प्रतिपल परतन्त्र होकर भी
पाप की पालड़ी भारी नहीं पड़ती। पल भर भी !
इनमें, पाप-भीरुता पलती रहती है
अन्यथा
स्त्रियों का नाम "भीरु" क्यों पड़ा ? (पृ. २०१)

नारी –

इनकी आँखें हैं करुणा की कारिका,
शत्रुता छू नहीं सकती इन्हें
मिलनसारी मित्रता। मुफ्त मिलती रहती इनसे।
यही कारण है ।कि इनका सार्थक नाम है "नारी"
यानी "न अरि" नारी अथवा
ये आरी नहीं हैं सो नारी।

महिला –

जो मह यानी मंगलमय माहौल
महोत्सव जीवन में लाती है,
महिला कहलाती वह।
जो निराधार हुआ, निरालम्ब। आधार का भूखा
जीवन के प्रति उदासीन-हतोत्साही हुआ,
उस पुरुष में मही यानी धरती
धृति-धारिणी जननी के प्रति
अपूर्व आस्था जगाती है।
और पुरुष को रास्ता बताती
सही-सही गन्तव्य का,
"महिला"कहलाती वह। (पृष्ठ२०२)

* * * * *

जो संग्रहणी व्याधि से ग्रसित हुआ है
जिसकी संयम की जठराग्नि मन्द पड़ी है
परिग्रह–संग्रह से पीड़ित पुरुष को
मही यानी मठा–महेरी पिलाती है,
"महिला" कहलाती है वह। (पृष्ठ २०२–२०३)

कुमारी –

"कु" यानी पृथिवी,
"मा" यानी लक्ष्मी और
"री" यानी देने वाली...
इससे यह भाव निकलता है कि
यह धरा सम्पदा–सम्पन्न ।तब तक रहेगी
जब तक यहाँ कुमारी रहेगी। (पृष्ठ २०४)

अबला –

जो अव यानी
"अवगम"–ज्ञान ज्योति लाती है
तिमिर–तामसता मिटाकर
जीवन को जागृत करती है
अबला कहलाती है वह।(पृष्ठ २०३)

* * * * *

जो पुरुष–चित्त की वृत्ति को
विगत की दशाओं और
अनागत की आशाओं से
पूरी तरह हटा कर
"अब" यानी
आगत–वर्तमान में लाती है
"अबला" कहलाती है वह। (पृष्ठ २०३)

* * * * *

बला यानी समस्या संकट है
न बला.... सो अबला।
समस्या–शून्य–समाधान।
अबला के अभाव में
सबल पुरुष भी निर्बल बनता है। (पृष्ठ २०३)
समस्त संसार ही, फिर, समस्या–समूह सिद्ध होता है,
इसलिए स्त्रियों का यह "अबला" नाम सार्थक है।

स्त्रीः–

"स्" यानी सम–शील–संयम
"त्री" यानी तीन अर्थ हैं–
धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ में,
पुरुष को कुशल संयत बनाती है
सो "स्त्री" कहलाती है। (पृष्ठ २०५)

सुता –

"सुता" शब्द स्वयं सुना रहा है
"सु" यानी सुहावनी अच्छाइयाँ
और
"ता" प्रत्यय वह
भाव–धर्म, सार के अर्थ में होता है
यानी
सुख–सुविधाओं का स्रोत–सो
"सुता" कहलाती है। (पृष्ठ २०५)

दुहिता –

दो हित जिसमें निहित हों
वह "दुहिता" कहलाती है
अपना हित स्वयं ही कर लेती है
पतित से पतित पति का जीवन भी
हित सहित होता है जिससे,
वह "दुहिता" कहलाती है। (पृष्ठ २०५)

* * * * *

उभय–कुल मंगल–वर्धिनी उभय–लोक–सुख सर्जिनी
स्व–पर–हित सम्पादिका ।कहीं रहकर किसी तरह भी
हित का दोहन करती रहती सो... "दुहिता" कहलाती है। (पृष्ठ २०६)

मातृ –

हमें समझना है
"मातृ" शब्द का महत्त्व भी।
प्रमाण का अर्थ होता है ज्ञान
प्रमेय यानी ज्ञेय और
प्रमातृ को ज्ञाता कहते हैं सन्त।
जानने की शक्ति वह
मातृ–तत्त्व के सिवा
अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं होती।
यही कारण है, कि यहाँ
कोई पिता–पितामह, पुरुष नहीं है
जो सबकी भी आधार–शिला हो
सबकी जननी / मात्र मातृतत्त्व है।

* * * * *

इसीलिए इस जीवन में
माता का मान सम्मान हो
उसी का जयगान हो सदा धन्य! (पृष्ठ २०६)

अङ्गना –

मैं अङ्गना हूँ
परन्तु
मात्र अँगना हूँ...

और भी कुछ हूँ मैं... ।
अंग के अन्दर भी कुछ
झाँकने का प्रयास करो,
अंग के सिवा भी कुछ
माँगने का प्रयास करो,
जो देना चाहती हूँ
लेना चाहते हो तुम!
"सो" चिरन्तन शाश्वत है
"सो" निरंजन भास्वत है,
भार–रहित आभा का आभार मानो तुम। (पृष्ठ २०७)

प्रकृति और पुरुष –

प्रकृति नहीं, पाप–पुञ्ज पुरुष है
प्रकृति की संस्कृति–परम्परा
पर से पराभूत नहीं हुई
अपितु अपने पन में तत्परा है। (पृष्ठ १२४)

* * * * *

पुरुष और प्रकृति
इन दोनों के खेल का नाम ही /ससार है,
यह कहना/ मूढता है, मोह की महिमा मात्र!
खेल खेलने वाला तो पुरुष है
और/ प्रकृति खिलौना मात्र।
स्वयं को खिलौना बनाना
कोई खेल नहीं है,
विशेष खिलाड़ी की बात है यह। (पृष्ठ ३९४)

* * * * *

प्रकृति का प्रेम पाये बिना,
पुरुष का पुरुषार्थ फलता नहीं। (पृष्ठ ३९५)

●

जीवन–दृष्टि

जीवन–दृष्टि महाकाव्य की महानता का आधारभूत तत्त्व है। जीवन–दर्शन से अभिप्राय उस संजीविनी–शक्ति से है, जो युगों–युगों तक जीवित रहने के लिए महाकाव्य को अमरता प्रदान करती है। यह स्मरणीय है कि जीवन–दर्शन, शब्द, "दर्शन" की अपेक्षा अधिक अर्थवान् है। जीवन–दर्शन के अन्तर्गत् महाकाव्य में प्रतिपादित दार्शनिक ही नहीं अपितु सांस्कृतिक, आध्यात्मिक विचार–धाराओं का भी समाहार किया जाता है। आलोच्य महाकाव्य "मूकमाटी" में जीवन–दृष्टि से सम्बद्ध उपलब्धियों का मूल्यांकन निम्नांकित तीन–सन्दर्भों में किया जा सकता है–

(१) दार्शनिक एवं आध्यात्मिक मान्यताओं का निरूपण।

(२) सांस्कृतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा।

(३) सृजन–प्रेरणा, उद्देश्य, और संदेश की महत्ता।

प्रस्तुत महाकाव्य में जीव, जगत्, माया, मोह, आत्मा, परमात्मा और मोक्ष सम्बन्धी विचारों को बड़ी सुगमता के साथ विवेचित किया गया है। अध्यात्म, संस्कृति और परम्परागत मान्यताओं को आदर्श रूप में व्यक्त किया गया है। कतिपय उदाहरणों द्वारा हम उपर्युक्त संदर्भों को "मूकमाटी" में खोजने का प्रयास कर सकते हैं। यद्यपि "मूकमाटी" मूलतः आध्यात्मिक–सन्त द्वारा सृजित होने से अध्यात्म का प्रतीक महाकाव्य है ही, किन्तु उसमें संस्कृति, युग–चेतना, युग–बोध, सम सामयिकता, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, लोकतान्त्रिक, समाजवाद, आतंकवाद एवं अन्य सामयिक प्रवृतियों को भी देखा जा सकता है। महाकाव्य में युग–चेतना, नैतिक–मूल्य और नवीन–जीवन–दृष्टि को यत्र–तत्र देखा जा सकता है। अध्यात्म और दर्शन के अनेकानेक उदाहरण दृष्टव्य हैं–अध्यात्म और दर्शन को परिभाषित करते हुए आचार्यश्री ने लिखा है–यथा

अध्यात्म और दर्शन –

स्वस्थ ज्ञान ही अध्यात्म है,
अनेक संकल्पों–विकल्पों में
व्यस्त जीवन दर्शन का होता है।
बहिर्मुखी या बहुमुखी प्रतिभा ही
दर्शन का पान करती है,
अन्तर्मुखी, बंदमुखी, चिदाभा
निरंजन का गान करती है।
दर्शन का आयुध शब्द है–विचार
अध्यात्म निरायुध होता है
सर्वथा स्तब्ध–निर्विचार!
एक ज्ञान है, ज्ञेय भी,
एक ध्यान है, ध्येय भी। (पृष्ठ २८८–२८९)

* * * * *

दर्शन का स्रोत मस्तक है,
स्वस्तिक से अंकित हृदय से
अध्यात्म का झरना है।
दर्शन के बिना अध्यात्म–जीवन
चल सकता है, चलता ही है
पर, हाँ! बिना अध्यात्म, दर्शन का दर्शन नहीं। (पृष्ठ २८८)

* * * * *

अध्यात्म स्वाधीन नयन है
दर्शन पराधीन उपनयन
दर्शन में दर्श नहीं शुद्ध तत्व का
दर्शन के आस–पास ही घूमती है
तथता और वितथता
यानी /कभी सत्य रूप कभी असत्य रूप
होता है दर्शन जबकि
अध्यात्म सदा सत्य चिद्रूप हो
भास्वत होता है। (पृष्ठ २८८)

संसार की मीमांसा करती हुई निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य है –

'सृ' धातु गति के अर्थ में आती है।
'सं' यानी समीचीन
'सार' यानी सरकता
जो सम्यक् सरकता है
वह संसार कहलाता है। (पृष्ठ १६१)

* * * * *

प्रति वस्तु जिन भावों को जन्म देती है
उन्हीं भावों से मिटती भी वह,
वहीं समाहित होती है।
यह भावों का मिलन–मिटन
सहज स्वाश्रित है
और अनादि – अनिधन। (पृष्ठ २८२–२८३)

नियति और पुरुषार्थ को निम्नांकित पंक्तियों में निरूपित किया गया है, यथा –

'नि' यानी निजमें ही
'यति' यानी यतन–स्थिरता है
अपने में लीन होना ही नियति है
निश्चय से यही यति है और
'पुरुष' यानी आत्मा–परमात्मा है
'अर्थ' यानी प्राप्तव्य प्रयोजन है
आत्मा को छोड़कर
सब पदार्थों को विस्मृत करना ही
सही पुरुषार्थ है। (पृष्ठ ३४९)

आचार्यश्री ने स्वप्न की मीमांसा इन पंक्तियों में की है –

'स्व' यानी अपना
'प' यानी पालन–संरक्षण
और
'न' यानी नहीं
जो निज भाव का रक्षण नहीं कर सकता
वह औरों को क्या सहयोग देगा ? (पृष्ठ २९५)

कार्य–कारण, निमित्त–उपादान जैसे दुरूह शब्दों को आचार्यश्री ने कितने सुबोध शब्दों में बाँधा है, यथा –

प्रति पदार्थ/ अपने प्रति/ कारक ही होता है,
परन्तु/ पर के प्रति

उपकारक भी हो सकता है
और
अपने प्रति/ करण ही होता है,
परन्तु/ पर के प्रति,
उपकरण भी हो सकता है। (पृष्ठ ३९–४०)

* * * * *

उपाय की उपस्थिति ही
पर्याप्त नहीं
उपादेय की प्राप्ति के लिए
अपाय की अनुपस्थिति भी अनिवार्य है।
और वह
अनायास नहीं, प्रयास–साध्य है। (पृष्ठ २३०)

'शाश्वत सत्ता' और उसके अनन्त गुणों और सम्भावनाओं को अभिव्यक्ति देती हुई पंक्तियाँ निम्नांकित हैं – यथा –

सत्ता शाश्वत होती है, बेटा !
प्रति–सत्ता में होती हैं,
अनगित सम्भावनायें
उत्थान–पतन की,
खस–खस के दाने–सा
बहुत छोटा होता है
बड़ का बीज वह।

* * * * *

अंकुरित हो, कुछ ही दिनों में
विशालकाय धारण कर
वट के रूप में अवतार लेता है,
यही इसकी महत्ता है,
सत्ता शाश्वत् होती है,
सत्ता भास्वत होती है बेटा ! (पृष्ठ ६)

अनादि–निधन संसार के सत्य और तथ्य को निरूपित करती हुई पंक्तियाँ –

'उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य युक्तं सत्'
सन्तों से वह सूत्र मिला है
इसमें अनन्त की अस्तिमा/ सिमट–सी गई है।
आना, जाना लगा हुआ है।
आना यानी जनन–उत्पादन है
जाना यानी मरण–व्यय है
लगा हुआ यानी स्थिर–ध्रौव्य है
और, है यानी चिर–सत्
यही सत्य है, यही तथ्य। (पृष्ठ १८४–८५)

संस्कृति –

महाकाव्य जातीय जीवन और सांस्कृतिक चेतना के आकलन का सांस्कृतिक प्रयास होता है। प्रस्तुत महाकाव्य मूकमाटी में लौकिक और पारलौकिक तत्त्वों को प्रतिपादित करते हुए नवीन मानवतावादी – संस्कृति के आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है। कोई महाकवि या महाकाव्य किसी

युग-विशेष, समाज, धर्म, सम्प्रदाय, वर्ग-जाति के संकीर्ण घेरे में बँधकर नहीं रह सकता, अपितु वह तो सर्वयुगीन, सार्वकालिक एवं सम्पूर्ण मानवता के लिए अवतरित होता है।

भारतीय संस्कृति के मूलमन्त्र -

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।"
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत।।

..... की अभिव्यक्ति आचार्यश्री की निम्नांकित पंक्तियों में हुई हैं -

"यहाँ..... सबका सदा
जीवन बने मंगलमय
छा जावे सुख-छाँव,
सबके सब टलें
अमंगल भाव
सबकी जीवन लता
हरित-भरित विहँसित हो
गुण के फूल विलसित हों,
नाशा की आशा मिटे
आमूल महक उठे -
बस।"(पृष्ठ ४७८)

* * * * *

महामना जिस ओर
अभि निष्क्रमण कर गये
सब कुछ तज कर, बन गये
नग्न, अपने में मग्न बन गये,
उसी ओर
उन्हीं की अनुक्रम-निर्देशिका
भारतीय संस्कृति है
सुख-शान्ति की प्रवेशिका। (पृष्ठ १०२-१०३)

पाश्चात्य संस्कृति से उत्पन्न भौतिक, विषयवाद, ने जीवन दूभर ही नही गर्हित कर दिया है। अर्थ-प्रधान संस्कृति मानव को मानवता से पतित कर देती है और वह शोषक निर्दय, परपीड़क और अत्याचारी बन जाता है। यह सब पाश्चात्य संस्कृति का ही प्रभाव है, यथा -

यह कटु - सत्य है कि अर्थ की आँखें
परमार्थ को देख नहीं सकती
अर्थ की लिप्सा ने बड़ों-बड़ों को
निर्लज्ज बनाया है। (पृष्ठ १९२)

* * * * *

आततायिनी, आर्तदायिनी
दीर्घ गीध-सी
इस धन गृद्धि के लिए
धिक्कार हो, धिक्कार हो। (पृ. १९७)

पाश्चात्य संस्कृति -

पश्चिमी सभ्यता
आक्रमण की निषेधिका नहीं है,
अपितु।

आक्रमण–शीला गरीयसी है,
जिसकी आँखों में
विनाश की लीला, विभीषिका
घूरती रहती है, सदा सदोदिता (पृष्ठ १० २)

* * * * *

'ही' पश्चिमी सभ्यता है
'भी' है भारतीय संस्कृति , भाग्य–विधाता,
रावण था 'ही' का उपासक
राम के भीतर 'भी' बैठा था
यही कारण कि
राम उपास्य हुये हैं, रहेंगे आगे भी। (पृष्ठ १७३)

पूँजीवादी प्रवृत्ति पर मार्मिक प्रहार और सामाजिक–राजनीतिक आश्वासन–वादिता पर करारा व्यंग्य करने वाली निम्नांकित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं –

सूखा प्रलोभन मत दिया करो
स्वाश्रित जीवन जिया करो
कपटता की पटुताको
जलाजलि दो।
गुरुता की जनिका लघुता को
श्रद्धांजलि दो।
शालीनता की विशालता में
आकाश समा जाय
और
जीवन उदारता का उदाहरण बने,
अकारण ही –
पर के दुःख का सदा हरण हो। (पृष्ठ ३८७–३८८)

सम–सामयिक समाज –

कृति और कृतिकार समसामयिक प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता है, अपितु वह दृष्टा और सृष्टा होता है। वह वर्तमान समाज में व्याप्त प्रवृत्तियों का मूक दृष्टा होकर – नवीन आदर्श समाज का सृष्टा भी होता है। 'मूकमाटी' में सामयिक स्थिति, राजनीति, समाज और धर्म का यथा–स्थिति चित्रण–दर्शन है। 'मूकमाटी' तत्कालीन समाज, राजनीति और धर्म का दर्पण बन गया है – यथा –

परन्तु खेद है कि/ लोभी पापी मानव
पाणि–ग्रहण को भी
प्राण–ग्रहण का रूप देते हैं।
प्रायः अनुचित रूप से
सेवकों से सेवा लेते और
वेतन का वितरण भी अनुचित ही।
ये अपने को बताते/ मनु की सन्तान !
महामना मानव!
देने का नाम सुनते ही –
इनके उदार हाथों में
पक्षाघात के लक्षण दिखने लगते हैं
फिर भी,

एकाध बूँद के रूप में
जो कुछ दिया जाता/ या देना पड़ता
वह दुर्भावना के साथ ही –
जिसे पाने वाले पचा न पाते सही
अन्यथा
हमारा रुधिर लाल होकर भी
इतना दुर्गन्ध क्यों ? (पृष्ठ ३८६–८७)
अरे ! धनिकों का धर्म दमदार होता है
उनकी कृपा कृपणता पर होती है
उनके मिलन से कुछ मिलता नहीं
काकतालीय न्याय से
कुछ मिल भी जाय
वह मिलन लवण–मिश्रित होता है
पल में प्यास दुगुनी हो उठती है। (पृष्ठ ३८५)

सामयिक राजनीति –

पंजाब में व्याप्त आतंकवाद ने सम्पूर्ण भारत को हिलाकर, सोचने के लिए विवश कर दिया। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधीजी ने पंजाब–समस्या का समाधान "पंजाब–समझौता" के रूप में प्रस्तुत किया था। राजनीतिक समीकरण का एक जीता–जागता उदाहरण दृष्टव्य है, किन्तु समस्या का समाधान कारगर सिद्ध नहीं हो सका। अपितु समस्या आज भी अपने विकराल रूप में मुँह बाये खड़ी है। तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री प्रकाशसिंह बादल के स्थान पर श्री सुरजीतसिंह बरनाला का मुख्यमंत्री के रूप में आगमन, इन पंक्तियों में झंकृत है –

बादल–दल छंट गये हैं,
काजल–दल कट गये हैं,
बरना, लाली क्यों फूटी है
सुदूर प्राची में। (पृष्ठ ४४०)

आचार्यश्री ने न केवल राष्ट्रीय समसामयिक स्थिति पर प्रकाश डाला है, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय जगत् को भी दिशा–बोध दिया हैं। भारत–विभाजन से उद्‌भूत कश्मीर–समस्या आज भी अपने विषम रूप में विद्यमान है। यदा–कदा पड़ोसी राष्ट्र पाकिस्तान इस समस्या को विकराल रूप देने का प्रयास करता रहता है। इससे सम्पूर्ण विश्व का ध्यान इस ओर केन्द्रित होने लगता है। सन्त–कवि ने सभी राष्ट्राध्यक्षों को सदय एवं अभय बनने का संकेत देते हुए, पड़ोसी राष्ट्र पाकिस्तान के तत्कालीन राष्ट्राध्यक्ष श्री जिया–उल–हक को सम्बोधित करते हुए, सद्‌भाव समष्टि, और सह–अस्तित्व के साथ रहने का निर्देश दिया है, ताकि विश्वशांति और मानव–कल्याण की श्री वृद्धि हो – यथा –

सदय बनो !
अदय पर दया करो
अभय बनो !
सभय पर किया करो अभय की
अमृत – मय वृष्टि,
सदा–सदा सदाशय दृष्टि,
रे जिया ! समष्टि जिया करो। (पृष्ठ १४९)

"स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है" – लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का यह कथन लोकप्रिय है। "मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुआ है, किन्तु वह हर जगह जंजीरों में जकड़ा हुआ है।"

– रूसो का यह कथन कितना सार्थक है। बंधन कोई भी प्राणी नहीं स्वीकारता है। स्वतन्त्रता–स्वाधीनता सभी को प्रिय है, किन्तु श्री टी.एच. ग्रीन के अनुसार –

"स्वतन्त्रता तभी तक स्वतन्त्रता है, जब तक दूसरों के अधिकारों का हनन नहीं करती।" स्वतन्त्रता, स्वच्छंदता या उच्छृंखलता में बदल जाती है। तीर्थंकर महावीर की वाणी – "जियो और जीने दो" सभी को, अपने से कम न समझो किसी को" – की उक्ति चरितार्थ करती हुई आचार्यश्री की ये पंक्तियाँ –

यहाँ/ बन्धन रुचता किसे ?
मुझे भी प्रिय है, स्वतन्त्रता
तभी–तो
किसी के भी बन्धन में
बँधना नहीं चाहता मैं,
न ही किसी को
बाँधना चाहता हूँ।
जानते हम
बाँधना भी तो बन्धन है/
तथापि
स्वच्छन्दता से स्वयं
बचना चाहता हूँ,
बचाता हूँ यथा–शक्य
और
बचना चाहे हो, न हो
बचाना चाहता हूँ औरों को
बचाता हूँ यथा–शक्य।
यहाँ बंधन रुचता किसे ?
मुझे भी प्रिय है स्वतन्त्रता। (पृष्ठ ४४२–४४३)

स्वतन्त्रता विषयक ऐसी धारणा (आत्मिक–भावना) जब हमारी बन जायेगी तो हम एकान्तवाद के स्थान पर अनेकान्तवाद के सच्चे पोषक बन जायेंगे। अनेकान्त–दर्शन को स्याद्वाद मयी शैली में अपनाने से सम्पूर्ण विश्व में लोकतन्त्र की जड़ें मजबूत होगीं और विश्व–शान्ति और विश्व–कल्याण का मार्ग प्रशस्त होगा, जिससे विश्वविजयिनी मानवता की प्रतिष्ठा होगी। आचार्यश्री की लोक–तन्त्र विषयक भावना निम्नांकित पंक्तियों में व्यक्त है –

लोक में लोक–तन्त्र का नीड
तब तक सुरक्षित रहेगा
जब तक 'भी' श्वास लेता रहेगा।
'भी' से स्वच्छन्दता मदान्धता मिटती है
स्वतन्त्रता के स्वप्न साकार होते हैं
सद्विचार सदाचार के बीज
'भी' में हैं 'ही' में नहीं।
प्रभु से प्रार्थना है कि
'ही' से हीन हो जगत्
अभी हो या कभी भी हो
'भी' से भेंट सभी की हो। (पृष्ठ १७३)

* * * * *

प्रायः बहुमत का परिणाम

यही तो होता है,
पात्र भी अपात्र की कोटि में आ जाता है
फिर,
अपात्र की पूजा में पाप नहीं लगता। (पृष्ठ ३८२)

* * * * *

हम ही सब कुछ हैं/ यूँ कहता है 'ही' सदा,
तुम तो तुच्छ, कुछ नहीं हो/ और
हम भी हैं,
तुम भी हो
सब कुछ – का प्रतीक है। (पृष्ठ १७२–७३)

वर्तमान राजनीति में व्याप्त स्वार्थपराता और पदलोलुपता ने बहु दलवाद को जन्म दिया है। लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों का होना अनिवार्य है किन्तु दलों का दल–दल नहीं, अपितु दलों का स्वस्थ समूह होना चाहिए। स्वतन्त्रता, स्वायत्तता, राष्ट्रीय एकता, धर्म निरपेक्षता, शान्ति, न्याय, नागरिक–कल्याण आदि की सुरक्षा करने और देश को निरंकुश सत्ता की मनमानी से बचाने में राजनीतिक दलों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, किन्तु जब दल कुत्सित राजनीति से प्रेरित हों तो अहितकर ही सिद्ध होते हैं। दल–बहुलता के दुष्परिणाम सन्त–कवि के शब्दों में –

दल बहुलता, शान्ति की हननी है, ना।
जितने विचार, उतने प्रचार
उतनी चाल–ढाल
हाला घुली जल–ता
क्लान्ति की जननी है ना।
तभी तो
अति–वृष्टि का, अनावृष्टि का
और
अकाल–वर्षा का समर्थन हो रहा यहाँ पर। (पृष्ठ १९७)

स्वार्थी, दंभी और लोभी मनुष्यों की संकीर्ण भावना जब तक उर्ध्वमुखी नहीं होती, तब तक उनके हृदय में – 'सबके उदय की बात' – सबके कल्याण की भावना का उदय हो नहीं सकता। उन्हें तो अपना–अपना ही दिखता है, दूसरों का नही, इतना ही नहीं अपितु वे दूसरों का हड़पने के चक्कर में रहते हैं। उनकी सबके हित में आस्था कहाँ ? तभी तो वे समाजवाद का नारा लगाकर भी अहंवाद के पोषक हैं। सन्त–कवि ने समाजवाद को निम्नांकित पंक्तियों में परिभाषित किया है–

समाज का अर्थ होता है – समूह,
और समूह यानी
सम–समीचीन ऊह–विचार है
जो सदाचार की नींव है।
कुल मिलाकर अर्थ यह हुआ कि –
प्रचार–प्रसार से दूर
प्रशस्त आचार–विचार वालों का
जीवन ही समाजवाद है।
समाजवाद, समाजवाद चिल्लाने मात्र से
समाजवादी नही बनेंगे। (पृष्ठ ४६१)

* * * * *

समष्टि में जीना ही सच्चा समाजवाद है। व्यष्टि हमारी एकान्त दृष्टि है। अपने में पर को समेट कर एकात्म होना समष्टि का प्रतीक है और यही समाजवाद है, यथा –

सदय बनो
अदय पर दया करो
अभय बनो
सभय पर किया करो
अभय की अमृतमय वृष्टि
सदा-सदा सदाशय दृष्टि
रे जिया, समष्टि जिया करो। (पृष्ठ १४९)

साहित्य-विषयक अवधारणा -

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज का यथा-तथा बिम्ब उसमें झलकता है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने इसे 'साकेत' में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है -

केवल मनोरंजन ही न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उद्देश्य का भी मर्म होना चाहिए।।

आचार्यश्री की साहित्य-विषयक मान्यता निम्नांकित पंक्तियों में देखी जा सकती है -

हित से जो युक्त-समन्वित होता है,
वह सहित माना है/और
सहित का भाव ही
साहित्य बाना है,
अर्थ यह हुआ कि
जिसके अवलोकन से
सुख का समुद्भव-सम्पादन हो,
सही साहित्य वही है, अन्यथा
सुरभि से विरहित पुष्प-सम
सुख का राहित्य है वह
सार-शून्य शब्द-झुण्ड . । (पृष्ठ १११)

* * * * *

शान्ति का श्वास लेता
सार्थक जीवन ही
स्रष्टा है, शाश्वत साहित्य का
इस साहित्य को
आँखें भी पढ़ सकती हैं,
कान भी सुन सकते हैं
इसकी सेवा हाथ भी कर सकते हैं
यही साहित्य जीवन्त है ना । (पृष्ठ 111)

मार्मिक - व्यंग्य -

'मूकमाटी' में सामयिक प्रसंगों को पर्याप्त समेटा गया है। यत्र-तत्र बिखरे उदाहरण मर्म पर करारी चोट करने में तीखे, सशक्त और पैने व्यंग्य हैं। कतिपय सामयिक व्यंग्य हमारी धर्मान्धता, आधुनिकता, जनसंख्या, महंगाई, बेरोजगारी और अर्थान्धता पर चोट करते हैं। यथा -

कहाँ तक कहें अब
धर्म का झण्डा भी
डण्डा बन जाता है
शास्त्र शस्त्र बन जाता है
अवसर पाकर।
और
प्रभु-स्तुति में तत्पर

सुरीली बाँसुरी भी
बाँस बन पीट सकती है,
प्रभु–पथ कर चलने वालों को।
समय की बलिहारी है। (पृष्ठ ७३)

आज जहाँ–तहाँ धर्म–धर्मायतन, देव–देवायतन, ध्यान–ध्यानायतन धड़ाधड़ खुल रहे हैं। ध्यान केन्द्रों की भरमार है, किन्तु ध्यान को समझे, साधे बिना ध्यान की शिक्षा देना और अप्रशिक्षित को सीधा ध्यानस्थ करा देना, ऐसा ही प्रतीत होता है,जैसे बिना प्रशिक्षण दिये किसी सैनिक को सीमा–सुरक्षा पर तैनात कर देना। परिणाम की कल्पना करने की आवश्यकता नहीं है। स्वतः सिद्ध है। सन्त–कवि ने ज्ञान और अध्याध्म को इन पंक्तियों में व्यक्त किया है – यथा

ध्यान की बात करना
और, ध्यान से बात करना
इन दोनों में बहुत अन्तर है –
ध्यान के केन्द्र खोलने–मात्र से
ध्यान में केन्द्रित होना सम्भव नहीं है। (पृष्ठ २८६)

* * * * *

क्या दर्शन और अध्यात्म,
एक जीवन के दो पद हैं ?
क्या इनमें पूज्य–पूजक भाव है ?
यदि है तो
पूजता कौन और पुजता कौन ?
क्या इनमें
कार्य–कारण भाव है ?
यदि है तो
कार्य कौन और कारण कौन ?
इनमें
बोलता कौन है और मौन कौन ?
ध्यान की सुगन्धि किससे फूटती है,
उसे कौन सूँघता है
अपनी चातुरी नासा से ?
मुक्ति किससे मिलती है ?
तृप्ति किससे मिलती है ? (पृष्ठ २८७)

* * * * *

मानता हूँ,
कि सदा–सदा से
ज्ञान –ज्ञान में ही रहता ,
ज्ञेय–ज्ञेय में ही
तथापि
ज्ञान का जानना ही नहीं
ज्ञेयाकार होना भी स्वभाव है,
तो इस ओर देखने में
हानि क्या थी ? (पृष्ठ ३८१)

सच्चे ज्ञान से दूर, नामधारी सन्तों की सदा निन्दा हुई है। बनावटी, पाखण्डी साधुओं के विषय में लोक प्रचलित उक्तियाँ उद्धृत करना समीचीन है, यथा–

नारि मुई सम्पत्ति नाशी, मूँड़ मुड़ाये भये सन्यासी।

* * * * *

ठाड़ो तिलक मधुरिया बानी, दगावाज़ की यही निशानी।।

सन्त–कबीर ने तो कर्मकाण्डियों एवं पोंगा–पण्डितों को बहुत फटकारा है। यथा –

पोथी पढ़–पढ़ जग मुआ, भया न पण्डित कोइ।
ढ़ाई अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होइ।।

* * * * *

माला फेरत जग मुआ, गया न मन का फेर।
कर का मनका डाल कै, मन का मनका फेर।। (सन्त – कबीर)

ढ़ोंगी, कपटी, धूर्त लोग साधु का वेष बनाकर समाज को सदैव ठगते आये हैं। साधु बनने से पूज्यपन और स्वादिष्ट सुपाच्य भोजन मिलता है। मूकमाटी में सन्त–कवि ने ऐसे ही भोजन–भट्ट और आत्मज्ञानहीन साधुओं पर करारी चोट की है। साथ ही, उन्हें सन्मार्ग भी दिखाया है। कवि स्वतः साधक–साधु हैं, इसलिए उन्होंने सच्चे साधु का स्वरूप भी निरूपित किया है। नामधारी साधु की विवेचना देखिये –

अरे सुनो !
कोष के श्रमण बहुत बार मिलते हैं
होश के श्रमण होते विरले ही,
और
उस समता से क्या प्रयोजन
जिसमें इतनी भी क्षमता नहीं है
जो समय पर
भयभीत को अभय दे सके,
श्रय–रीत को आश्रय दे सके।
यह कैसी विडम्बना है ? (पृष्ठ ३६१)

* * * * *

लगता है ज्ञेयों से भय लगता हो
नामधारी सन्त के ज्ञान को,
ऐसी स्थिति में निश्चित ही
स्वभाव समता से विमुख हुआ जीवन
अमरत्व की ओर नहीं
समरत्व की ओर
मरण की ओर, लुढ़क रहा है।
और सुनो !
जीवन का, न यापन ही
नयापन है
और
नैयापन। (पृष्ठ ३८१)

* * * * *

एक के प्रति राग करना ही
दूसरे के प्रति द्वेष सिद्ध करता है,
जो रागी है और द्वेषी भी,
सन्त हो नहीं सकता वह
और
नाम–धारी सन्त की उपासना से
संसार का अन्त हो नहीं सकता
सही सन्त का उपहास और होगा – (पृष्ठ ३६३)

* * * * *

गृहस्थ अवस्था में
नाम-धारी सन्त यह
अकाल में पला हुआ हो
अभाव-भूत से घिरा हुआ हो
फिर भला कैसे हो सकता
बहुमूल्य वस्तुओं का भोक्ता। (पृष्ठ ३६३)

* * * * *

सन्त-कवि ने सच्चे साधु का स्वरूप निरूपित करते हुये लिखा है -

साधु बनकर
स्वाद से हटकर
साध्य की पूजा में डूबने से
योजनों दूर वाली मुक्ति भी वह
साधक की ओर दौड़ती-सी लगती है,
सरोज की ओर रवि किरणावली-सी। (पृष्ठ ३८२-८३)

* * * * *

जिनके सर के
केश रहे कहाँ काले
श्रमण वेष धारे
वर्षों-युगों व्यतीत हुए
पर, श्रामण्य का अभाव-सा लगता है
सर होते हुए भी बिसर चुके हैं,
अपने भाव-धर्म।
वह सर-दार का जीवन
असर दार कहाँ रहा ?
अब सरलता का आसार भी नही
तन में, मन में, चेतन मे।

आज 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की पवित्र भावना, हम दो, हमारे दो के सीमित दायरे से भी सिमट कर हम दो तक आ गई है। इतना ही नही, आगे भी इसका आधुनिकीकरण आचार्यश्री के शब्दों में -

'वसुधैव कुटुम्बकम्'
इसका आधुनिकीकरण हुआ है,
वसु यानी धन-द्रव्य
धा यानी धारण करना
धन होकुटुम्ब बन गया है,
धन ही मुकुट बन गया है, जीवन का। (पृष्ठ ८२)

भौतिकवादी युग में, भौतिक उपादानों के संग्रह की बलवती प्रवृत्ति ने मानव को अंधा कर दिया है। आज का मानव इतना परिग्रही हो गया है कि उसकी सीमा नहीं रही। दूसरों का हक छीनकर, स्वत्व कर लेता है। परिणामस्वरूप असमान वितरण के कारण समाज में चोरी, डकैती, लूट-पाट, हत्या जैसे जघन्य अपराध बढ़ते जा रहे हैं। आचार्यश्री ने मानव की इस संग्रह-प्रवृत्ति और उससे उत्पन्न स्थिति पर मार्मिक व्यंग्य करते हुए दिशा-निर्देश दिया है -

यह कटु सत्य है कि
अर्थ की आँखें
परमार्थ को देख नहीं सकतीं

अर्थ की लिप्सा ने बड़ों-बड़ों को
निर्लज्ज बनाया है। (पृष्ठ १९२)

* * * * *

आततायिनी, आतदायिनी
दीर्घ शीघ-सी
इस धन-गृद्धि के लिए
धिक्कार हो, धिक्कार हो। (पृष्ठ १९७)

* * * * *

अब धन-संग्रह नहीं !
जन-संग्रह करो !
और
लोभ के वशीभूत हो,
अंधाधुन्ध संकलित का
समुचित वितरण करो
अन्यथा/ धनहीनों में
चोरी के भाव जागते हैं, जागे हैं,
चोरी मत कर, चोरी मत करो,
यह कहना केवल/ धर्म का नाटक है।
उपरिल सभ्यता .... उपचार । (पृष्ठ ४६७-४६८)

कलि-काल का अमिट प्रभाव यत्र-तत्र-सर्वत्र-नजर आता है। कलियुग का कलुषित मानव केवल विषय-सेवन में ही लीन है। उसकी दृष्टि, उसका आचरण कलुषित है। आचार्यश्री ने कलि-काल के दुष्प्रभावों का सविस्तार विवेचन किया है -

कलि-काल की वैषयिक छाँव में,
प्रायः यही सीखा है इस विश्व ने,
वैश्यवृत्ति के परिवेश में -
वेश्यावृत्ति की वैयावृत्य......... (पृष्ठ २१७)

* * * * *

इसे कलि-काल का प्रभाव ही कहना होगा
किंवा
अन्धकारमय भविष्य की आभा
जो मौलिक वस्तुओं के उपयोग से
विमुख हो रहा है संसार। और
लौकिक वस्तुओं के उपभोग में
प्रमुख हो रहा है, धिक्कार! (पृष्ठ ४९१)

* * * * *

आज बाजार में आदर के साथ
बात-बात पर इस्पात पर ही
सबका दृष्टिपात है।
जेल में भी /अपराधी के हाथ-पैरों में
इस्पात की ही
हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ होती हैं।
कहाँ तक कहें और इधर
युवा-युवतियों के हाथों में भी

इस्पात के ही कड़े मिलते हैं।
क्या यही विज्ञान है ?
क्या यही विकास है ?
बस ! सोना सो गया अब,
लोहा से लोहा लो ..... हा। (पृष्ठ ४१२-४१३)

वर्तमान स्थिति पर तीव्र प्रहार करती हुई पंक्तियाँ निम्नांकित हैं –

क्या सदय हृदय भी आज,
प्रलय का प्यासा बन गया ?
क्या तन-संरक्षण हेतु,
धर्म ही बेचा जा रहा है ?
क्या धन-सम्वर्धन हेतु,
शर्म ही बेची जा रही है ? (पृष्ठ २०१)

आज वर्तमान गणतन्त्रीय न्याय-व्यवस्था एक दिखावा बन गयी है। न्याय की लम्बी प्रक्रिया, कानून का अंधा होना, रिश्वत-खोरी और अर्थ की प्रभुता के कारण अपराध-प्रवृत्ति घटने के बजाय बढ़ती जा रही है, क्योंकि –

प्रायः अपराधी जन बच जाते,
निरपराध ही पिट जाते।

* * * * *

इसे हम गणतन्त्र कैसे कहें ?
यह तो शुद्ध धन-तन्त्र है
या मनमाना तन्त्र है। (पृष्ठ २७१)

* * * * *

आशातीत विलम्ब के कारण ,
अन्याय-न्याय-सा नहीं
न्याय-अन्याय सा लगता ही है।
और यही हुआ
इस युग में इस के साथ। (पृ. २७२)

सन्त-कवि ने वर्तमान दण्ड-संहिता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है। यद्यपि, गाँधीजी अपराधियों को सुधारने के लिए कारावास को सुधारालय की संज्ञा देते थे, किन्तु आज हम विपरीत स्थिति देखते हैं। अपराधी प्रशिक्षित होकर बाहर आते हैं। आचार्यश्री कहते हैं –

उद्दण्डता दूर करने हेतु
दण्ड-संहिता होती है,
माना,
दण्डों में अन्तिम दण्ड
प्राण-दण्ड होता है।
प्राण-दण्ड से
औरों को तो शिक्षा मिलती है,
परन्तु
जिसे दण्ड दिया जा रहा है,
उसकी उन्नति का अवसर ही समाप्त।
दण्ड-संहिता इसको माने या न माने,
क्रूर अपराधी को
क्रूरता से दण्डित करना भी

एक अपराध है,
न्याय–मार्ग से स्खलित होना है। (पृष्ठ ४३०–३१)

युग–बोध कराती हुई निम्नांकित पंक्तियाँ दृष्टव्य है –

अन्याय मार्ग का अनुशरण करने वाले
रावण जैसे शत्रुओं पर
रणांगण में कूद कर राम जैसे
श्रमशीलों का हाथ उठना ही
कलियुग में सत्–युग ला सकता है।
धरती पर यहीं पर। (पृष्ठ ३६२)

* * * * *

क्योंकि
सत्पुरुषों से मिलने वाला
वचन–व्यापार का प्रयोजन
परहित–सम्पादन है,
और
पापी पातकों से मिलने वाला
वचन–व्यापार का प्रयोजन
परहित–पलायन पीड़ा है। (पृष्ठ ४०२)

श्रमशील, उद्यमशील होना प्रगति की निशानी है। जो परिश्रम से डरते हैं और थोड़े से व्यवधान आने पर भी साहस खो देते हैं, ऐसे मनुष्यों को नई जीवन–दृष्टि देने वाली पंक्तियों को उद्धृत करना समीचीन प्रतीत होता है –

कभी–कभी / गति या प्रगति के अभाव में,
आशा के पद ठण्डे पड़ते हैं
धृति, साहस, उत्साह भी / आह भरते हैं,
मन खिन्न होता है। किन्तु
यह सब आस्थावान् पुरुषों को अभिशाप नहीं है,
वरन् / वरदान ही सिद्ध होते हैं।
जो यमी, दमी
हरदम उद्यमी हैं। (पृष्ठ १३)
क्योंकि
संघर्षमय जीवन का / उपसंहार
नियम रूप से / हर्षमय होता है। (पृष्ठ १४)

इसी प्रकार की प्रेरणा हमें निम्नांकित पंक्तियों से मिलती है कि हम अपने गन्तव्य से पीछे न हटें और किसी से कोई अपेक्षा न करें। विषम परिस्थितियों का डटकर मुकाबला करें। दूसरों से प्राप्त सहायता हमारी हीनता को ही दर्शाती है –

यह सही नीति है कि
रणांगन में कूदने के बाद
मित्र–बल की स्मृति नहीं होती
प्रत्युत,
शत्रु–बल पर
टूट पड़ना ही होता है।
पराश्रय लेना दीनता का प्रतीक है,
वीर–रस को क्षति पहुँचती है इससे,

इतना ही नहीं
मित्रों से मिली मदद
यथार्थ में मद-द होती है
जो विजय के पथ में बाधक,
अन्धकार का कार्य करती है। (पृष्ठ ४५९-४६०)

समाज, धर्म, अर्थ, राजनीति सर्वत्र पद – लोलुपता का साम्राज्य नजर आता है। येन-केन प्रकारेण पद प्राप्त करना लक्ष्य बन गया है। सामयिक स्थिति पर कठोर प्रहार करती हुई पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं –

पद वाले ही पदोपलब्धि हेतु
पर को पद-दलित करते हैं,
पाप-पाखण्ड करते हैं।
प्रभु से प्रार्थना है कि
अपद ही बने रहें हम !
जितने भी पद हैं
वह विपदाओं के आस्पद हैं,
पद-लिप्सा का विषधर वह
भविष्य में भी हमें न सूँघे,
बस यही भावना है, विभो। (पृष्ठ ४३४)

आज अर्थ की आँखें परमार्थ की सूक्ष्मता को देख नहीं सकती हैं। सब कुछ अर्थ से तौला जा रहा है। मूल्याकन का मापदण्ड अर्थ है। सन्त-कवि ने अर्थशास्त्रियों को नई दृष्टि देते हुए कहा है कि क्या तुम्हें अर्थ का भी अर्थ मालूम है ? यथा –

अन्तिम भाग, बाल का भार भी
जिस तुला में तुलता है
वह कोयले की तुला नहीं साधारण-सी
सोने की तुला कहलाती है असाधारण।
सोना तो तुलता है
सो . .. अतुलनीय नहीं है
और
तुला कभी तुलती नहीं है
सो अतुलनीय रही है
परमार्थ तुलता नही कभी
अर्थ की तुला में
अर्थ को तुला बनाना
अर्थशास्त्र का अर्थ ही नहीं जानना है
और
सभी अनर्थों के गर्त में
युग को ढकेलना है।
अर्थशास्त्री को क्या ज्ञात है यह अर्थ ? (पृष्ठ १४२)

* * * * *

धन से अन्य वस्तुओं का
मूल्य आँका जा सकता है
वह भी आवश्यकतानुसार
कभी अधिक कभी हीन

और कभी औपचारिक
और यह सब,
धनिकों पर आधारित है।
धनिक और निर्धन –
ये दोनों
वस्तु के सही–सही मूल्य को
स्वप्न में भी आँक नहीं सकते,
कारण
धन–हीन दीन–हीन होता है प्रायः
और
धनिक वह
विषयान्ध, मदाधीन।। (पृष्ठ ३०८)

* * * * *

धन का मितव्यय करो, अतिव्यय नहीं
अपव्यय हो तो कभी नहीं
भूलकर स्वप्न में भी नहीं। (पृ. ४१४)

आज सम्पूर्ण जगत् को शान्ति की आवश्यकता है। अहंकार की प्रवृत्ति ने मानव को मानवता से पतित कर दिया है। सर्वत्र आतंकवादी प्रवृत्तियाँ मुखर हो रही हैं। बहिर्जगत् तो पूर्ण रूप से आतंकित है ही। अन्तर्जगत् भी विषय–कषायों, भोग–विलासों के विकारों से आतंकित है। जब तक हमारे अन्तर्जगत् में – सद् वृत्तियों, सद्विचारों का स्फुरण नहीं होता और वे आचरण में नहीं आते तब तक सुख–शान्ति की खोज अधूरी ही रहेगी और हम विज्ञान की अन्धकारपूर्ण दौड़ में दौड़ते रहेंगे – सशंक। अणु–परमाणु की शक्ति का दुरुपयोग करने के बजाय सदुपयोग मानव–कल्याण की दिशा में और अपनी–शक्ति का सदुपयोग आत्म–कल्याण की दिशा में करना होगा अन्यथा आतंकवाद का प्रबल प्रभाव ही दिखाई देगा। संकल्प–शक्ति के समक्ष असत् को घुटने टेकने ही पड़ते हैं और सदैव 'सत्यमेव जयते' के स्वर गूँजते हैं –

जब तक जीवित है आतंकवाद
शान्ति का श्वास ले नहीं सकती
धरती यह, ये आँखें अब
आतंकवाद को देख नहीं सकती
ये कान अब
आतंक का नाम सुन नहीं सकते
यह जीवन भी कृत–संकल्पित है कि
उसका रहे या इसका
यहाँ अस्तित्व एक का रहेगा। (पृष्ठ ४४१)

युग–चेतना का बोध कराती हुई आचार्यश्री की ये पंक्तियाँ कितनी मार्मिक हैं और जीवन की सार्थकता के लिए मार्ग–चुनने का दिशा–बोध कराती हैं –

इस युग के / दो मानव
अपने आपको / खोना चाहते हैं –
एक भोग–राग को, मद्य–पान को
चुनता है, और एक
योग–त्याग को आत्म–ध्यान को
धुनता है।
कुछ ही क्षणों में दोनों होते

विकल्पों से मुक्त।
फिर क्या कहना !
एक शव के समान निरा पड़ा है
और एक
शिव के समान खरा उतरा है। (पृष्ठ २८६)

इसी प्रकार जब जीवन में आस्था आ जाती है तो जीवनसाधना के सहारे सार्थक हो जाता है, यथा –

इसलिए जीवन का/ आस्था से वास्ता होने पर
रास्ता स्वयं शास्ता होकर
सम्बोधित करता साधक को
साथी बन–साथ देता है।
आस्था के तारों पर ही
साधना की अँगुलियाँ
चलती हैं साधक की
सार्थक जीवन में तब
स्वरातीत सरगम झरती है। (पृष्ठ ९)
यही मानव–जीवन का श्रेय और प्रेम है।

स्वास्थ्य एव चिकित्सा विषयक नूतन अवधारणा –

भौतिक जगत् में नीरोग–शरीर प्रथम सुख माना जाता है, क्योंकि – 'शरीरमाद्यं खलु धर्म–साधनम्' – की उक्ति चरितार्थ होती है। अंग्रेजी में कहा जाता है – A Sound mind in a sound body. अर्थात् स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन। इस प्रदूषित जलवायु और वातावरण में आचार्य श्री ने पर्यावरण के सुधार की दिशा में हमारा ध्यानाकर्षण किया है। अर्थान्ध लोग मिलावट कर वस्तु के गुणों को विकृत कर रहे हैं, जिससे दुष्परिणाम की शंका बनी रहती है।

ऐलोपैथिक युग में लोग तुरन्त आराम चाहते हैं, किन्तु ऐलोपैथिक औषधि स्थायी लाभ नहीं पहुँचाती बल्कि कालान्तर में दूसरी बीमारी का कारण बनती है। सन्त–कवि ने आयुर्वेदिक और प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति को समुचित ठहराते हुए लिखा है – "माटी, पानी और हवा, सौ रोगों की एक दवा" तथा 'आधा भोजन कीजिये, दुगुना पानी पीव, तिगुना श्रम, चौगुनी हँसी, वर्ष सवा सौ जीव'।

आचार्यश्री ने स्वस्थ एव दीर्घायु जीवन जीने का मन्त्र बता दिया है। वे स्वत – 'अहिंसा–परक चिकित्सा–पद्धति जीवित रहे चिर'–(पृ. ४०९) के पोषक हैं। कवि ने माटी के उपचार की महिमा की प्रतिष्ठापना करते हुए लिखा है –

पक्वापक्व रुधिर से भरा घाव हो
भीतरी चोट हो या बाहरी,
असहनीय कर्ण–पीड़ा हो
ज्वर से कपाल फट रहा हो
नासा की नासूर हो
शीत से बहती हो
या उष्णता से फूटती हो
और
शिरः शूल आधा हो या पूरा
इन सब अवस्थाओं में
माटी का प्रयोग लाभप्रद होगा।
यहाँ तक कि

हस्त-पाद की अस्थि टूटी हो
माटी के योग से जुड़ सकती है
अविलम्ब !
कुछ ही दिनों में पूर्ववत्
कार्यारम्भ !
कहाँ तक कही जाय माटी की महिमा,
तुला कहाँ है वह
तौलें कैसे ?
किससे तुलना करें माटी की
यहाँ पर ?
तोल-मोल का अर्थ
द्रव्य से नहीं,
वरन्
भाव, गुण-धर्म से है। (पृष्ठ ४०५-६)

इसी प्रकार कवि ने मणि-मुक्ता, मूँगे, पुखराज, नीलम आदि के प्रभाव और उपचार के विषय में लिखा है। इनके प्रयोग-उपयोग से अनेक असाध्य रोगों का शमन होता है। यथा -

झिलमिल-झिलमिल करती
मणिमय मालायें
मंजुल-मुक्ता की लड़ियाँ
झरझुर-झरझुर करते
अनगिन पहलूदार
उदार हीरक-हार,
तोते की चोंच को लजाते
गूँगे से मूँगे
नयनाभिराम नीलम के नग-
जिन्हें देखकर
मयूर-कण्ठ की नीलिमा नाच उठती है,
केशर बिखेरते पुखराज,
पारदर्शक स्फटिक,
अनल-सम लाल होकर भी
शान्त किरणों के पुंज माणिक....
इन सब से केवल
शीतलता ही नहीं मिलती हमें
मधुमेय खास-श्वास-क्षय
आदि-आदि राज-रोगों का
उपशमन भी होता है इनसे,
और प्रायः जीवन पर
ग्रहों का प्रतिकूल प्रभाव भी नहीं पड़ता,
किन्तु आज !
काँच-कचरे को ही सम्मान मिल रहा है। (पृष्ठ ४११-१२)

* * * * *

चाँदनी की रात में
चन्द्रकान्त मणि से झरा

उज्ज्वल शीतल जल ले
मलयाचल का चन्दन
घिस-घिस कर
ललाट-तल नाभि पर
किया गया लेप
वरदान माना है
दाह-रोग के उपशमन में।
यह भी सुना, अनुभव भी है कि
तात्कालिक ताजे
शुद्ध-सुगन्धित घृत में
अनुपात से कपूर मिला-घुला कर
हलकी-हलकी अँगुलियों से
मस्तक के मध्य, ब्रह्म-रन्ध्र पर
और

मर्दन-कला-कुशलों से
रोगन-आदिक गुणकारी तैल
रीढ़ में मलना भी
दाह के शमन में रामबाण माना है। (पृष्ठ ४१३)

* * * * *

भोजन-पान के विषय में भी
ऐसा ही कुछ घट रहा है –
स्वादिष्ट बलवर्धक दुग्ध का सेवन,
ओज-तेज विधायक घृत का भोजन,
अकाल-मरण-वारक
सात्विक शान्त-भाव-सृजक
दीर्घ निर्मित पक्वान्न आदि
बहुविध व्यंजन उपेक्षित हुए हैं,
उसी का परिणाम है कि
दाह-रोग का प्रचलन हुआ है। (पृष्ठ ४१४)

●

युग – चेतना, नैतिक मूल्य एवं मानवतावादी अवधारणा

'मूकमाटी' में अध्यात्म, दर्शन, धार्मिकता, राजनीतिकता, पारिवारिक जीवन, समाज–व्यवस्था, कर्त्तव्यवादिता, नारी की महत्ता, विश्व–बन्धुत्व एवं विश्व–शान्ति जैसे महत्त्वपूर्ण भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों का निरूपण हुआ है। मानव–मन में व्याप्त विश्वास, मानव–मूल्यों के प्रति अनन्य निष्ठा और आशावादी कर्ममय जीवन की आस्था उत्पन्न कर, आत्म–कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर, सन्त–कवि आचार्यश्री विद्यासागरजी ने मानवतावाद की प्रतिष्ठापना की है। हिन्दी के कतिपय आधुनिक महाकाव्यों में इसी मानवतावादी चिन्तन–धारा की प्रवृत्तियों को निरूपित किया गया है – मानव–मूल्यों की महत्ता का प्रतिपादन, मानव–जीवन के अन्तर्बाह्य संघर्ष की निर्भीक व्यंजना, मानव–मर्यादा और शक्ति की स्वीकृति आदि।

आचार्यश्री के शब्दों में – "जिसके प्रति प्रसंग पंक्ति से पुरुष को प्रेरणा मिलती है – सुसुप्त चैतन्य शक्ति को जागृत करने की, जिसने वर्ण–जाति–कुल आदि व्यवस्था विधान को नकारा नहीं है, परन्तु जन्म के बाद आचरण के अनुरूप उनमें उच्च–नीचता रूप परिवर्तन को स्वीकारा है। इसी लिए 'संकर–दोष' से बचने के साथ–साथ 'वर्ण–लाभ' मानव–जीवन का औदार्य व साफल्य माना है। जिसने शुद्ध–सात्विक भावों से सम्बन्धित जीवन को धर्म कहा है, जिसका प्रयोजन सामाजिक, शैक्षणिक, राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्रों में प्रविष्ट हुई कुरीतियों को निर्मूल करना और युग को शुभ–संस्कारों से संस्कारित कर भोग से योग की ओर मोड़ देकर वीतराग श्रमण–संस्कृति को जीवित रखना है .... और जिसका नामकरण हुआ है "मूकमाटी"।

'जो श्रम करे सो श्रमण' – जिसने इन्द्रियों को जीत लिया, जित या जिन है – ऐसा व्यक्ति जो इन्द्रियों को जीतने के लिए श्रमशील है, वह श्रमण किसी जाति, वर्ग, समाज या धर्म तक ही सीमित नहीं रह सकता, अपितु वह सम्पूर्ण मानव–जाति में हो सकता है। ऐसी–श्रमण–संस्कृति मानव–संस्कृति से युग को संस्कारित करने वाली दृष्टि है – मूकमाटी की दृष्टि। आचार्यश्री की ये पंक्तियाँ इसी भावना को व्यक्त करती हैं –

कृति रहे, संस्कृति रहे,
आगामी असीम काल तक
जागृत ... जीवित अजित !
सहज प्रकृति का वह
श्रृंगार ..... श्रीकार
मनहर आकार ले
जिसमें आकृत होता है
कर्ता न रहे, वह
विश्व के सम्मुख कभी भी
विषम विकृति का वह
क्षार–दार संसार
अहंकार का हुँकार ले
जिसमें जागृत होता है।
और / हित स्व पर का
निश्चित निराकृत होता है। (पृष्ठ २४५–२४६)

युग को संस्कारित करने के लिए ऐसे ही कवि और कृति का अवतरण होना विशिष्ट उपलब्धि है। हिन्दी साहित्य के कतिपय महाकाव्यों की निम्नांकित पंक्तियाँ उद्धृत करना समीचीन प्रतीत होता है, जो ऐसे ही भावों को व्यक्त करने वाली हैं – यथा –

भव में नव–वैभव प्राप्त कराने आया।
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।।
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाये आया।। (साकेत –राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त)

सन्त-कवि ने जहाँ एकान्तवाद, आतंकवाद का अवसान कर; अनेकान्तवाद अनन्तवाद की स्थापना कर मानवता की विजय का संदेश दिया है, वहाँ कामायनीकार जयशंकरप्रसादजी ने समरसता जन्य आनन्दवाद की प्रतिष्ठा कर मानवतावाद के स्वर फूंके हैं - यथा -

शक्ति के विद्युत् कण, जो व्यस्त,
विकल बिखरे हैं हो निरुपाय।
समन्वय उनका करे समस्त,
विजयिनी मानवता हो जाय।। *(कामायनी-प्रसाद)*

मानव अपूर्व गुणों का भण्डार और सृष्टि का श्रृंगार है। इन गुणों का विस्तार ही मानवता की पराकाष्ठा है। यथा -

यह मनुष्य जो सृष्टि का श्रृंगार।
ज्ञान का विज्ञान का आलोक का आगार।।
(कुरुक्षेत्र- रामधारी सिह 'दिनकर')

पूँजीवादी, साम्राज्यवादी अनाचारों से जर्जरित मानव-समाज के सरक्षण की मूलभूत प्रेरणा से अनुप्राणित ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

मनुजता के जीवन का मर्म, आह की गहराई ले जान।
मनुजता की रक्षा के हेतु, निछावर कर दे अपने प्राण।।
(साकेत-संत-डॉ. बल्देवप्रसाद मिश्र)

इस प्रकार 'मूकमाटी' के माध्यम से विश्व-जीवन को प्रेरित करने वाला मानवतावादी संदेश प्रसारित हुआ है, जो समग्र मानव-जाति की थाती है। इस महाकाव्य के जीवन-दर्शन में ऐसी सास्कृतिक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक मानवीय निष्ठा में प्रतिफलित हुई हैं जो अनन्त काल तक मानव जाति की प्रेरणा का अजस्र स्रोत बनकर उसे आप्लाविन करती रहेगी। साहित्यिक महत्त्व की दृष्टि से ये महाकाव्य की रूप रचना मे, महाकाव्य तत्व का जो विकास हुआ है, वह महत्त्वपूर्ण, सृजानात्मक एव काव्यशास्त्रीय उपलब्धि कही जायेगी।

●

मूकमाटी का महाकाव्यत्व

कवि अपने युग का प्रतिनिधि होता है। जैसा उसे मानसिक खाद्य मिलता है, वैसी ही उसकी कृति होती है। जिस प्रकार बेतार के तार का ग्राहक आकाश–मण्डल में विचरण करती हुई विद्युत् तरंगों को पकड़कर उसको भाषित शब्द का आकार देता है, ठीक उसी प्रकार कवि अपने समय के वायुमण्डल में घूमते विचारों को पकड़कर, उसको भाषित शब्द का आकार देता है। कवि अपने समाज के भावों की मूर्ति एवं मुख होते हैं। कवि के द्वारा निर्मित भावों की मूर्ति समाज की नेत्री बन जाती है। साहित्य में मानव–जाति के समस्त अनुभवों और विचारों का अक्षय–भण्डार सुरक्षित है। साहित्य समष्टि और व्यष्टि की गति, गरिमा और प्राण है। समाज का स्वर, जागृति और प्रकाश है "साहित्य"।

वस्तुतः सत्य का स्वरूप साहित्य और साधना में मिलता है। समाज परिवर्तनशील है। वह गिरगिट की तरह रंग बदलता है। किन्तु श्रेष्ठ साहित्य कभी पुराना नहीं पड़ता अपितु शाश्वत् और नित–नूतन रहता है। साहित्य का सम्बन्ध मूलतः भावों से होता है। साहित्यकार केवल सामाजिक जीवन को ही नहीं चित्रित करता, बल्कि मानवता के व्यापक धरातल पर, वह व्यक्ति और समाज के नियमो का सन्तुलन स्थापित करता है और मनुष्य को उसकी भाव–भूमि से ऊपर उठाकर उदात्ततर बनाता हुआ आनन्द की सृष्टि करता है। इसी व्यापक मानवता से काव्य में स्थायित्व उत्पन्न होता है। यही कारण है कि – कालिदास, शेक्सपीयर, होमर, मिल्टन और तुलसी, शताब्दियों पुराने होने पर भी उनके काव्य आज भी मनोरम और प्रेरक हैं।

सार्वदेशिक और सार्वकालिक विश्व–काव्यों में कुछ समान प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं। उनका मूल स्वर भिन्न नहीं होता और उसमें जीवन के शाश्वत सत्य का निरूपण होता है। यह सत्य इतिहास से भी महान् बन जाता है। इस तरह का काव्य, स्थिति का विश्लेषण करते हुए किसी नवीन दिशा का संचार करता है। इसका आधार कवि की साधना, अनुभूति और जन–जीवन से प्राप्त प्रेरणा होती है। इसमें मानवीय भावों का तादात्म्य स्थापित हो जाता है। मूकमाटी [१] में कवि ने इन्हीं मूलभूत समस्याओं और विश्व सत्य को अभिव्यक्ति दी है।

मूकमाटी सन्त–कवि आचार्य विद्यासागरजी की अद्यतन प्रौढ़तम काव्य–कृति और सर्वोत्कृष्ट विश्व साहित्य की एक अनुपम कड़ी है। इसे अध्यात्म और रूपक महाकाव्य कहना समीचीन प्रतीत होता है। किस कृति को महाकाव्य कहा जाये और किस को नहीं ? यह सर्वथा स्वाभाविक प्रश्न है।

वस्तुत युग–जीवन की चेतना को आत्मसात् करने के कारण ही महाकाव्य युग की देन कहे जाते हैं। प्रत्येक युग के निर्माण में विभिन्न परिस्थितियों का योगदान होता है। इस कारण महाकाव्य के स्वरूप में भी परिवर्तन नजर आता है। युगीन सन्दर्भों में आधुनिक हिन्दी महाकाव्य किसी भी प्रकार से अतीत के आर्ष महाकाव्यों से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

मूकमाटी का रचना फलक जहाँ रामायण, महाभारत और रामचरितमानस जैसे युग–प्रवर्तक महाकाव्यों की तरह व्यापक है, वहीं इसके रचयिता वाल्मीकि, व्यास और गोस्वामी तुलसीदास जैसे साधक और सन्त भी हैं। इसके अलावा युग–चेतना का उद्घोष, जातीय जीवन का प्रतिनिधित्व, नवीन सामाजिक संरचना के उदात्त संकल्प, आध्यात्मिक निष्ठाओं के परिष्कार, महत् सांस्कृतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा और कलात्मक औदात्त के कारण 'मूकमाटी' को हिन्दी साहित्य का गौरव–ग्रन्थ कहना उपयुक्त है।

आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्यों के लक्षणों पर सम्यक् विचार करना प्रासगिक प्रतीत होता है। यद्यपि, भारतीय और पाश्चात्य आचार्यों ने महाकाव्य के जो मानदण्ड निर्धारित किये, वे उनके समय के पूर्व मे रचे गये महाकाव्यों के आधार पर ही निर्धारित किये गये हैं, फिर भी

---

१. **मूकमाटी (महाकाव्य : आचार्य विद्यासागर, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, १८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदीरोड, दिल्ली, प्रथम सस्करण १९८८, पृष्ठ २४ + ४८८**

विचार करना संगत है। आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों पर संस्कृत के महाकाव्य की ही छाप है, फिर भी अनेक लक्षणों की अवहेलना भी नजर आती है। हिन्दी के प्रमुख समीक्षकों के महाकाव्य विषयक मानदण्ड निम्नानुसार हैं –

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – ने महाकाव्य के स्वरूप पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला है। उन्होंने चार तत्त्वों को महत्त्वपूर्ण माना है – इतिवृत्त, वस्तुव्यापार वर्णन, भाव–व्यजंना तथा संवाद।

डॉ. श्याम सुन्दरदास के अनुसार महाकाव्य में महत् उद्देश्य, उदात्त आशय और संस्कृति का चित्रण होना चाहिये।

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने महाकाव्य के तीन लक्षण माने हैं – रचना का प्रबन्धात्मक या सर्गबद्ध होना, शैली की गम्भीरता और वर्णित विषय की व्यापकता और महत्त्व।

डॉ. नगेन्द्र ने महाकाव्य के **चार आधारभूत तत्त्व** निर्धारित किये हैं – उदात्तकथानक, उदात्त कार्य या उद्देश्य, उदात्त चरित्र, और उदात्त भाव और उदात्त शैली। औदात्त ही महाकाव्य का प्राण है।

डॉ. नगेन्द्र द्वारा महाकाव्यालोचन के निर्धारित मानदण्डों के आधार पर किसी भी काव्य कृति के महाकाव्यत्व का आकलन किया जा सकना समुचित प्रतीत होता है। यद्यपि सर्वथापूर्ण और सर्वमान्य मानदण्ड निर्धारित करना तो अत्यन्त कठिन है क्योंकि परिस्थितियों, परम्पराओं और मान्यताओं में परिवर्तन होता रहता है। आचार्यों के अनुसार महाकाव्य का आकार इस प्रकार निर्धारित होता है – (१) महाकाव्य का शरीर (२) महाकाव्य की आत्मा।

(१) शरीर – सर्ग–रचना, नामकरण, अलंकार, भाषा, छंद, वस्तु–स्थिति एवं पात्र–विश्लेषण, वर्ण्य–विषय, प्रकृति (ऋतुयें) संसार, पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्ध आदि।

(२) आत्मा – रस, भाव, नायक का चरित्र, लौकिक–आलौकिक का समन्वय दैवीय और आसुरी प्रवृत्तियों का संघर्ष।

उपर्युक्त आधारों पर मूकमाटी, महाकाव्य की कसौटी पर खरी उतरती है। इसमें इन तत्त्वों का समावेश है। मूकमाटी का महत् उद्देश्य मानव संस्कृति का संरक्षण और सम्वर्द्धन है। कृतिकार ने स्वतः व्यक्त किया है –

"जिसने शुद्ध–सात्विक भावों से सम्बद्ध जीवन को धर्म कहा है, जिसका प्रयोजन सामाजिक, शैक्षणिक, राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्रों में प्रविष्ट हुई कुरीतियों को निर्मूल करना है और युग को शुभ संस्कारों से संस्कारित कर, भोग से योग की ओर मोड़ देकर वीतराग श्रमण–सस्कृति को जीवित रखना है और जिसका नामकरण हुआ है "मूकमाटी"। (मानस तरंग से)

श्रमण–संस्कृति मानव संस्कृति का वाचक है, क्योंकि कृतिकार युग को ऐसे मानव–संस्कारों से संस्कारित करना चाहता है, जो मानव–कल्याण के लिए उपयोगी हैं। भौतिकता की चकाचौंध से चकराये मानव को सही दिशा–बोध देना मूकमाटी का लक्ष्य है जिस प्रकार "भारत–भारती" में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का संदेश है –

हम कौन थे, क्या हो गये हैं ?
और क्या होंगे अभी ?
आओ विचारें आज मिलकर
ये समस्यायें सभी।। *(भारत–भारती गुप्त)*

इसी प्रकार का भाव जयशंकरप्रसाद की इन पंक्तियों में झंकृत होता है –

जगे हम लगे जगाने विश्व,
लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम–तम पुंज हुआ तब नष्ट,
अखिल संस्कृति हो उठी अशोक।। *(कामायनी)*

आज हम अपनी आत्मीयता में सास्कृतिक मूल्याकन करने में असमर्थ हैं। ऐसी स्थिति में हमारा भविष्य क्या होगा ? हम किस प्रकार मानवता की रक्षा कर सकेंगे ? अपनी संस्कृति के

प्रति आकर्षण नहीं होगा तो हम मातृभूमि (देश की माटी) की गरिमा का जयघोष कैसे कर सकेंगे ? अतएव सांस्कृतिक उन्नयन आवश्यक है जिससे स्नेहपूर्ण जीवन का विकास होता है। कृतिकार ने भारतीय संस्कृति में मूल–मंत्र को इन पंक्तियों में बाँधा है –

"कृति रहे, संस्कृति रहे
आगामी असीम काल तक
जागृत .... जीवित ... अर्जित।
सहज प्रकृति का वह ।
शृंगार–श्रीकार
मनहर आकार ले
जिससे आकृत होता है
कर्त्ता न रहे, वह
विश्व के सम्मुख कभी भी
विषम–विकृति का वह
क्षार–दार संसार
अहंकार का हुंकार ले
जिसमें जागृत होता है।
और
हित स्व पर का यह
निश्चित निराकृत होता है।" (मूकमाटी, पृष्ठ २४५)
"सर्वे भवन्ति सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुखभाग् भवेत।।

भारतीय संस्कृति का यह संदेश मूकमाटीकार ने इन पंक्तियों में अभिव्यक्त किया है –

यहाँ...... सबका सदा
जीवन बने मंगलमय
छा जावे सुख छाँव
सबके सब टलें,
अमंगल भाव
सब की जीवन–लता
हरित–भरित विहँसित हो
गुण के फूल विलसित हों
नाशा की आशा मिटे
आमूल महक उठे
बस।" (पृष्ठ ४७८)

इस भौतिकतावादी जड़ युग में ऐसे कवि और कृति का अवतरित होना विशेष उपलब्धि है। "साकेत" महाकाव्य में गुप्तजी ने ऐसा ही भाव इन पंक्तियों में व्यक्त किया है –

भवन में नव – वैभव प्राप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।। (साकेत – मैथिलीशरण गुप्त)

'कामायनी' महाकाव्य में प्रसादजी ने जहाँ समरसताजन्य आनन्दवाद की प्रतिष्ठा कर मानवता के स्वर फूंके हैं, वहीं सन्त कवि विद्यासागरजी ने एकान्तवाद, आतंकवाद का अवसान कर, अनेकान्तवाद और अनन्तवाद की स्थापना कर मानवता की विजय का संदेश दिया है। यथा –

शक्ति के विद्युत्–कण, जो व्यस्त

विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय,
समन्वय उनका करे समस्त,
विजयिनी मानवता हो जाय। (कामायनी – प्रसाद)

पूँजीवादी, साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों से खोखले इस मानव–समाज को संरक्षित करने की मूलभूत चेतना से अनुप्राणित पंक्तियाँ मूकमाटी में इस प्रकार हैं –

अर्थ की आँखें
परमार्थ की देख नही सकतीं
अर्थ की लिप्सा ने बड़ों–बड़ों को
निर्लज्ज बनाया है। (पृष्ठ १९२)

* * * * *

आततायिनी, आर्तदायितनी
दीर्घ गीध– सी
[illegible] धन गृद्ध के लिए
धिक्कार हो, धिक्कार हो। (पृष्ठ १९७)

* * * * *

अब धन– सग्रह नहीं
जन–सग्रह करो
और
लोभ के वशीभूत हो
अंधाधुंध संकलित का
समुचित वितरण करो
अन्यथा धनहीनों में
चोरी के भाव जागते हैं, जागे हैं। (पृष्ठ ४६७–६८)

'साकेत सन्त' महाकाव्य में पण्डित बल्देवप्रसाद मिश्र ने मानवता की रक्षा के लिए ऐसा ही भाव व्यक्त किया है –

मनुजता के जीवन का मर्म, आह की गहराई ले जान।
मनुजता की रक्षा के हेतु, निछावर कर दे अपने प्राण।।

भौतिक जड़वाद ने मानव को स्वार्थी, लोभी, निर्दय बना दिया है। आचार्यश्री ने मूकमाटी मे इस भौतिकवाद की ओर पाठको का ध्यान आकृष्ट किया है, जिसके विषय परिणाम परिलक्षित होते है –

कलि–काल की वैषयिक छाँव में,
प्राय यही सीखा है इस विश्व ने
वैश्यवृत्ति के परिवेश में
वेश्यावृत्ति की वैयावृत्य .... (पृष्ठ २१७)
अन्धकार–मय भविष्य की आभा
जो मौलिक वस्तुओ के उपयोग से
विमुख हो रहा है ससार
और
लौकिक वस्तुओं के उपभोग मे
प्रमुख हो रहा है धिक्कार। (पृष्ठ ४११)

'वैदेही–वनवास' में अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी भौतिकता की निन्दा की है, जो स्वार्थ–भावना के वैषम्य को उत्पन्न करती है –

भौतिकता में यदि है जडता वादिता,

आध्यात्मिकता मध्य चिन्मयी शक्ति है।
आध्यात्मिकता का प्रचार कर्त्तव्य है,
जिससे यथासमय भव का हित हो सके। (वैदेही–वनवास – हरिऔध)

मूकमाटी में सन्त–कवि ने 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना को साकार कर दिया है। आत्मानुभूति के लिए सच्ची आस्था की आवश्यकता है। आस्था से ही साधना में सरलता और जीवन में सार्थकता आती है। यथा –

जीवन का / आस्था से वास्ता होने पर
रास्ता स्वयं शास्ता होकर
सम्बोधित करता साधक को
साथी बन साथ देता है।
आस्था के तारों पर ही
साधना की अँगुलियाँ
चलती हैं साधक की
सार्थक जीवन में तब
स्वरातीत सरगम झरती है। (पृ. ९)

ऐसा ही अटल आस्थावादी भाव साकेत में गुप्तजी ने इन पंक्तियों में व्यक्त किया है। यथा–

राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या ?
विश्व में रमे हुए नहीं, सभी कहीं हो क्या ?
तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करें,
तुम न रमो तो मन तुममें रमा करें। (साकेत–मैथिलीशरण गुप्त)

भारतीय संस्कृति, आर्य–सस्कृति की विजय स्थापित करना प्रत्येक कवि का कर्म रहा है। असत् पर सत् की विजय ही कवि का अभिप्रेय रहता है। गुप्तजी ने साकेत में आर्य–संस्कृति का आदर्श निम्न पंक्तियों में अभिव्यक्त किया है–

मैं आर्यों को आदर्श बताने आया।
जन–सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।
सुख–शान्ति हेतु मैं क्रांति मचाने आया।
विश्वासी का विश्वास बचाने आया।
मैं आया उनके हेतु जो तापित हैं।
जो विवश बिकल बलहीन दीन शापित हैं। (साकेत–गुप्त)

मूकमाटीकार ने सुख–शान्ति की जननी भारतीय–संस्कृति की ओर संकेत करते हुए लिखा है–

महामना जिस ओर
अभिनिष्क्रमण कर गये
सब कुछ तजकर, वन गये
नग्न, अपने में मग्न, बन गये
उसी ओर
उन्हीं की अनुक्रम निर्देशिका
भारतीय संस्कृति है–
सुख–शान्ति की प्रवेशिका। (पृष्ठ १०२–१०३)

* * * * *

"ही" पश्चिमी–सभ्यता है,
"भी" है भारतीय संस्कृति,
भाग्य–विधाता,

रावण था "ही" का उपासक
राम के भीतर "भी" बैठा था।
यही कारण कि
राम उपास्य हुए हैं, रहेंगे, आगे भी।

* * * * *

"भी" के आस–पास
बढ़ती–सी भीड़ लगती अवश्य
किन्तु भीड़ नहीं
"भी" लोकतन्त्र की रीढ़ है। (पृष्ठ १७३)

"सत्यमेव जयते" साहित्य का सत्य है। इस सत्य का उद्‌घाटन एवं सम्पोषण कवि को अभिप्रेत होता है। यही सत्य जीवन का सत्य बनकर, जीवन को सार्थकता प्रदान करता है। महाकाव्यों में सत्य की मीमांसा की गयी है–

सत्य में ही स्थिर है संसार
सत्य ही सब धर्मों का सार।
राज ही नहीं प्राण–परिवार
सत्य पर सकता हो सब बार। (साकेत–गुप्त)

'Truth is God'–सत्य ईश्वर है। असत् का ज्ञान और उससे छुटकारा पाना ही सत्य की पहचान और प्राप्ति है। मूकमाटीकार ने इसी सत्य की व्याख्या की है–

"असत्य की सही पहचान ही सत्य का अवधान है"।

* * * * *

"दया का होना ही जीव–विज्ञान का सम्यक् परिचय है।

* * * * *

"अधिकार का भाव आना संप्रेषण का दुरुपयोग है।

* * * * *

"सहकार का भाव आना सदुपयोग है, सार्थक है।"

* * * * *

"अनुकूलता की प्रतीक्षा करना सही पुरुषार्थ नहीं है।"

* * * * *

"संघर्षमय जीवन का उपसंहार,
नियम से हर्षमय होता है।" (पृष्ठ १४)

"अतिथिदेवो भव"–अतिथि–सत्कार भारतीय संस्कृति का एक आदर्श है। अतिथि के बिना तिथियों का भी महत्त्व नहीं है। मूकमाटीकार ने कहा कि अतिथि ही तिथियों को पूज्य बनाते हैं–यथा–

अतिथि के बिना कभी
तिथियों में पूज्यता आ नहीं सकती
अतिथि, तिथियों का सम्पादक है ना।

साकेत में गुप्तजी ने स्वयं भगवान् श्रीराम द्वारा अतिथि सत्कार का एक चित्रांकन इन शब्दों में अंकित किया है–

अपना आमंत्रित अतिथि मानकर सबको
पहले परोस पाई तृप्ति दान कर सबको।
प्रभु ने स्वजनों के साथ किया भोजन यों
सेवन करता है, मंद पवन उपवन में। (साकेत–गुप्त)

* * * * *

मूकमाटी समसामयिक आधुनिकता, राष्ट्रीय चेतना, युग–बोध, नैतिक मूल्यों, लोकतन्त्र, समाजवाद, साम्य–समता, लोक–कल्याण, विश्व–बन्धुत्व, आधुनिक भौतिकवादी भोग–लिप्सा का त्याग, कर्मशील जीवन की प्रेरणा, एवं नारी के सम्यक् मूल्यांकन जैसी विशेषताओं से समाविष्ट है। कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं। "धृति–धारिणी धरती"–को मूकमाटीकार ने इस प्रकार अभिव्यंजित किया है–

धरती शब्द का भी भाव
विलोम रूप में यही निकलता है–
ध...र...ती...ती...र...थ
यानी जो तीर को धारण करती है,
या शरणागत को तीर पर धरती है
वह "धरती" कहलाती है।

इस धरती पर, सबको समान अधिकार है। यदि प्रत्येक का हित होता है तो यहीं पर लोकतत्व को महत्त्व मिलता है। लोक–कल्याण की यह पवित्र भावना महाकाव्यों में इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है–

केवल उन्हीं के लिए नहीं यह धरणी,
है औरों की भी भारधारिणी भरणी।
जब पद के बंधन मुक्ति हेतु हैं सबके,
यदि नियम न हों उच्छिन्न सभी हों कब के। (साकेत–गुप्त)

* * * * *

धर्मराज यह भूमि किसी की
नहीं क्रीत है दासी,
हैं जन्मना समान परस्पर
इसके सभी निवासी।
है सबको अधिकार मृत्ति का
पोषक रस पीने का,
विविध अभावों से अशंक हो,–
कर जग में जीने का।
सबको मुक्त प्रकाश चाहिये,
सबको मुक्त समीरण,
बाधा–रहित विकास, मुक्त
आशंकाओं से जीवन। (कुरुक्षेत्र–दिनकर)

लोक में लोकतन्त्र का नीड
तब तक सुरक्षित रहेगा
जब तक "भी" स्वास लेता रहेगा।
"भी" से स्वच्छन्दता–मदान्धता मिटती है
स्वतन्त्रता के स्वप्न साकार होते हैं,
सद् विचार, सदाचार के बीज
"भी" में हैं, "ही" में नहीं।
प्रभु से प्रार्थना है कि
"ही" से हीन हो, जगत्
अभी हो या कभी भी हो
"भी" से भेंट सभी की हो। (मूकमाटी)

"वसुधैव कुटुम्बकम्, विश्व-बन्धुत्व, विश्व-शान्ति और सह-अस्तित्व की पवित्र भावना से ओत-प्रोत" उपर्युक्त कथन कितना मार्मिक एवं प्रेरक है।

कर्म ही मानव को महान् बनाते हैं। सत्कर्मों के बल पर ही हम विश्व में गरिमा प्राप्त करते हैं। हमारे श्रेष्ठ कर्म तो इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग बना सकते हैं। यथा-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म-फल-हेतु र्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्व कर्मणि।। (गीता अ. २/४७)

आंग्ल कवि एच.डब्ल्यू लागफेलो ने भी ऐसा ही कर्मशील भाव निम्नपंक्तियों में व्यक्त किया है-

Let us der be up and doing
With a heart for any faith.
Still achieving still persuing
Learn to Labour and to wait.

सन्त कवि गोस्वामी तुलसीदास ने कर्म की विस्तृत मीमासा करते हुए लिखा है-

कर्म-प्रधान विश्व रचि राखा।
को करि तर्क बढ़ावै शाखा।।

* * * * *

सकल पदारथ हैं जग माँहीं।
कर्महीन नर पावत नाहीं।।

* * * * *

जो जस करै तो तस फल चाखा। (रामचरितमानस - तुलसीदास)

* * * * *

संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

* * * * *

पर जो मेरा गुण कर्म स्वभाव करेंगे,
वे औरों को भी तार पार उतरेंगे। (साकेत-गुप्त)

श्रम होता सबसे अमूल्य धन,
सब जन खूब कमाते
सब अशंक रहते अभाव से,
सब इच्छित सुख पाते।
प्रकृति नहीं डरकर झुकती है,
कभी भाग्य के बल से,
सदा हारती वह मनुष्य के,
उद्यम से, श्रम-जल से।। (कुरुक्षेत्र-दिनकर)

मूकमाटी में सन्त कवि ने उद्यमी होना प्रगति का प्रतीक माना है। यथा-"मन वांछित फल मिलना ही उद्यम की सीमा है"-

कभी-कभी गति या प्रगति के अभाव में,
आशा के पद ठण्डे पड़ जाते हैं
धृति, साहस, उत्साह भी आह भरते हैं
मन खिन्न होता है, किन्तु
यह सब आस्थावान् पुरुषों को अभिशाप नहीं हैं,

वरन् वरदान ही सिद्ध होते हैं,
जो यमी, दमी, हरदम उद्यमी हैं।
क्योंकि–
संघर्षमय जीवन का उपसंहार
नियम से हर्षमय होता है।

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य, प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।

"कला कला के लिए" अथवा " कला जीवन के लिए" यह प्रश्न आज भी ज्वलंत है। इसका समाधान साहित्यकारों ने अवश्य किया है। यथा–

केवल मनोरञ्जन ही न कवि का कर्म होना चाहिये।
उसमें उचित उद्देश्य का भी मर्म होना चाहिये।।

* * * * *

हो रहा है जो जहाँ सो हो रहा।
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा ?
किन्तु देना चाहिये कब क्या कहाँ ?
व्यक्त करती है कला ही यह यहाँ।
मानते हैं जो कला के अर्थ ही,
स्वार्थ भी करते कला को व्यर्थ ही।(साकेत–गुप्त)

मूकमाटी में साहित्य और कला विषयक अवधारणा निम्नाकित पंक्तियों में व्यक्त की गयी है–

कला शब्द स्वयं कह रहा है–
"क" यानी आत्मा और सुख है
"ला" यानी लाना–देता है
कोई भी कला हो
कला मात्र से जीवन में
सुख–शान्ति–सम्पन्नता आती है।

* * * * *

हित से जो युक्त समन्वित होता है
वह सहित माना है और
सहित का भाव ही
साहित्य बाना है
अर्थ यह हुआ कि
जिसके अवलोकन से
सुख का समुद्र भव–सम्पादन हो
सही साहित्य वही है,
अन्यथा
सुरभि से विरहित पुष्प–सम
सुख का राहित्य है वह
सार–शून्य शब्द–झुण्ड।

* * * * *

शान्ति का श्वास लेता
सार्थक जीवन ही
सृष्टा है शाश्वत् साहित्य का

इस साहित्य को
आँखें पढ़ सकती हैं
कान भी सुन सकते हैं
इसकी सेवा हाथ भी कर सकते हैं
यही साहित्य जीवन्त है ना !

भारतीय साहित्य में नारी के आदर्श रूप को अंकित किया गया है–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता. ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रिया. ।।

आर्य–संस्कृति का यह आदर्श मूकमाटी मे साकार हो उठा है। नारी एक शक्ति है। वह पुरुष की सहचरी है। उसमे सागर जैसी गम्भीरता, आकाश जैसी विशालता और पृथ्वी जैसी क्षमा–शीलता समाविष्ट है। वह पूज्या है। मूकमाटी में नारी के अनेक रूपों की नवीन व्याख्या हुई है, जो आदर्श नितान्त मौलिक और स्तुत्य है, यथा–

"स" यानी सम– शील– सयम
"त्री" यानी तीन अर्थ हैं–
धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ में,
पुरुष को कुशल संयम बनाती है,
सो "स्त्री" कहलाती है।

* * * * *

इनकी आँखें हैं करुणा की कारिका
शत्रुता छू नही सकती इन्हे
मिलनसारी मित्रता,
मुफ्त मिलती रहती इनसे।
यही कारण है कि
इनका सार्थक नाम है "नारी"
यानी "न अरि" नारी अथवा
ये आरी नही है सो नारी।

* * * * *

"अवगम" ज्ञान–ज्योति लाती है
तिमिर तामसता मिटाकर
जीवन को जागृत करती है
"अबला" कहलाती है वह।

* * * * *

अनागत की आशाओ से पूरी तरह हटाकर
"अब" यानी आगत–वर्तमान में लाती है
अबला कहलाती है वह।

* * * * *

"बला" यानी समस्या संकट है,
न बला सो अबला।

अन्य कवियों ने भी नारी महिमा का विशद् विवेचन किया है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के अनुसार नारी का एक रूप–

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल मे है दूध, और आँखो में पानी।।

* * * * *

अबस अबला तुम ? सफल बलवीरता,
विश्व की गम्भीरता धुर धीरता।
बाले तुम्हारी एक बाँकी दृष्टि पर,
मर रही है जी रही है सृष्टि भर। (साकेत–गुप्त)

* * * * *

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत–सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।।
भूल गये पुरुषत्व मोह में,
कुछ सत्ता है नारी की।
समरता ही सिद्धान्त बनी,
अधिकृत और अधिकारी की।। (कामायनी–प्रसाद)

* * * * *

नारी धरती से अम्बर तक,
बीज सृजन के बोती।
विश्व चुनौती बन जाये यदि,
नत नयनों के मोती।।
कह न सके कोई नारी को
आँख उठाकर अबला।
हर नारी बन जाये दुर्गा–
वीणा–वादिनी, कमला।।
विश्वशान्ति हो जाये क्षण में,
बहे प्रेम की धारा।
समता का सागर लहराये,
चमके भाग्य–सितारा।।
(नारी धरती से अम्बर तक–बाबूलाल जैन "जलज")

भाग्य और पुरुषार्थ भौतिक युग के छलावा है। किस्मत, कुदरत और हिकमत ये तीन शब्द ही जीवन को अपने जाल में फँसाये हैं। जो निर्धन हैं, वे भाग्य को कोसते और जो प्रपंच से संग्रह करते वे पुरुषार्थी कहलाते हैं। जबकि मूकमाटीकार ने नियति और पुरुषार्थ की सच्ची परिभाषा की है जो जीवन को सार्थकता प्रदान करती है। यथा–

"नि" यानी निज में ही
"यति" यानी यतन स्थिरता
अपने में लीन होना ही नियति है
निश्चय से यही यती है
और
"पुरुष" यानी आत्मा–परमात्मा है,
"अर्थ" यानी प्राप्तव्य प्रयोजन है
आत्मा को छोड़कर
सब पदार्थों को विस्मृत करना ही

सही पुरुषार्थ है।

किन्तु यह अज्ञानी मानव भाग्यवादी हो, भौतिकता तक ही सोचता है–यथा–

"कायर मनकर एक अधारा, दैव–दैव आलसी पुकारा"। (सन्त तुलसीदास)

* * * * *

पूछो किसी भाग्यवादी से,
यदि विधि अंक प्रबल है,
पद पर क्यों न देती स्वय,
वसुधा निज रतन उगल है।
एक मनुज संचित करता है,
अर्थ पाप के बल से,
और भोगता उसे दूसरा,
भाग्यवाद के छल से।।
लोभ–नागिनी ने विष फूँका,
शुरु हो गई चोरी,
लूट–मार–शोषण, प्रहार,
छीनाझपटी वरजोरी।
छिन्न–भिन्न हो गई श्रृखला,
नर समाज की सारी,
लगी डूबने कोलाहल के,
बीच मही बेचारी। (कुरुक्षेत्र–दिनकर)

इसीलिए मूकमाटीकार ने नया सन्देश दिया है–

अब धन–सग्रह नही,
जन–सग्रह करो
और
लोभ के वशीभूत हो,
अधाधु ध संकलित का
समुचित वितरण करो
अन्यथा धन–हीनो मे
चोरी के भाव जागते हैं, जागे हैं,
चोरी मत कर, चोरी मत करो,
यह कहना केवल धर्म का नाटक है।

* * * * *

एक पथ है छोड जगत् को,
अपने में रम जाओ,
खोजो अपनी मुक्ति और,
निज को ही सुखी बनाओ।
अपर पन्थ है, औरो को भी,
निज विवेक बल देकर,
पहुँचो स्वर्ग लोक में जग से,
साथ बहुत को लेकर।। (कुरुक्षेत्र–दिनकर)

'मूकमाटी' अध्यात्म का लहराता सागर है। इसमें अध्यात्म, दर्शन, धर्म और सिद्धान्त जैसे दुरूह और क्लिष्ट विषयों को सरल, सुबोध भाषा में अभिव्यक्त किया गया है। यथा–अध्यात्म और दर्शन –दिग्दर्शन–

स्वस्थ ज्ञान ही अध्यात्म है,
अनेक संकल्प विकल्पों में
व्यस्त जीवन, दर्शन का होता है।
बहिर्मुखी या बहुमुखी प्रतिभा ही
दर्शन का पान करती है,
अन्तर्मुखी, बदमुखी चिदाभा
निरंजन का गान करती है।
दर्शन का आयुध शब्द है–विचार
अध्यात्म निरायुद्ध होता है,
सर्वथा स्तब्ध–निर्विचार।
एक ज्ञान है, ज्ञेय भी
एक ध्यान है, ध्येय भी।

* * * * *

अध्यात्म स्वाधीन नयन है
दर्शन पराधीन उपनयन,
दर्शन में दर्श नहीं शुद्ध तत्त्व का
दर्शन के आस–पास घूमती है
तथता और वितथता
यानी कभी सत्य रूप कभी असत्य रूप।
होता है दर्शन जबकि,
अध्यात्म सदा सत्य चिद्रूप हो
भास्वत होता है।

सिद्धान्त –*उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य–युक्त–सत्*
सन्तो से यह सूत्र मिला
इसमें अनन्त की अस्मिता सिमट गयी है।
आना जाना लगा हुआ है।
आना यानी जनन–उत्पाद है
जाना यानी मरण–व्यय है
लगा हुआ यानी स्थिर–ध्रौव्य है,
और
है यानी चिर सत्
यही सत्य है, यही तथ्य है।

* * * * *

प्रति वस्तु,
जिन भावों को जन्म देती है
उन्हीं भावों से मिटती भी वह
वही समाहित होती है।

यह भावों का मिलन-मिटन
सहज स्वाश्रित है
और अनादि-निधन।

ऐसी ही कर्मशील जगत् की मीमासा कामायनी एव कुरुक्षेत्र में भी की गयी है यथा-

यह नीड मनोहर कृतियों का,
विश्व एक रग-स्थल है, ।
है लग रही यहाँ परम्परा,
ठहरा जिसमें जितना बल है।। (कामायनी-प्रसाद)

कर्म-भूमि है निखिल मही तल
जब तक नर की काया,
तब तक है जीवन के अणु-अणु
में कर्त्तव्य समाया।
क्रिया-धर्म को छोड़ मनुज,
कैसे निज सुख पायेगा,
कर्म रहेगा साथ, भाग वह
जहाँ कहीं जायेगा। (कुरुक्षेत्र-दिनकर)

वैज्ञानिक युग की मानव-दृष्टि का यथार्थ चित्र इन शब्दों में व्यक्त कर कवि ने युग-बोध कराया है। मार्ग-चुनना ही है तो शिवकारी ही चुनना चाहिये। यथा-

इस युग के दो मानव
अपने आपको खोना चाहते है-
एक भोग-राग,
मद्य-पान को चुनता है,
और
एक योग-त्याग को,
आत्म-ध्यान को धुनता है।
कुछ ही क्षणों में,
दोनों होते विकल्पों से मुक्त।
फिर क्या कहना,
एक शव के समान निरा पड़ा है,
और
एक शिव के समान खरा उतरा है। (मूकमाटी)

मानव की सत् और असत् वृत्तियों का ऐसा ही वर्णन निम्नाकित पक्तियों में व्यक्त हुआ है। उदाहरण-

यह मनुज जो ज्ञान का आगार है।
यह मनुज जो सृष्टि का श्रृंगार है।
नाम सुन भूलो नहीं, सोचो-विचारो कृत्य,
यह मनुज संहार-सेवी, वासना का भृत्य, ।
छद्म इसकी कल्पना, पाखण्ड इसका ज्ञान,
यह मनुष्य मनुष्यता का घोर अपमान।

* * * * *

इससे बढ़कर मनुज-वंश का
और पतन क्या होगा ?
मानवीय गौरव का बोलो
और हनन क्या होगा ? (कुरुक्षेत्र-दिनकर)

मूकमाटी समकालीन संस्कृति, धर्म, दर्शन, समाज, राजनीति, अर्थनीति का दर्पण बन गया है। मानव-समाज में व्याप्त धन-लोलुपता ने पवित्र बन्धनों को भी व्यावसायिक-अनुबंध बना दिया है। जीवन, जीवन नहीं, व्यापार बन गया है-यथा-

खेद है कि लोभी पापी मानव
पाणि-ग्रहण को भी
प्राण-ग्रहण का रूप देते हैं।
प्रायः अनुचित रूप से
सेवकों से सेवा लेते हैं और
वेतन का वितरण भी अनुचित ही
ये अपने को बताते मनु की संतान
महामानव।
देने का नाम सुनते ही
इनके उदार हाथों में
पक्षाघात के लक्षण दिखने लगते है
फिर भी
एकाध बूंद के रूप मे
जो कुछ दिया जाता या देना पड़ता
वह दुर्भावना के साथ ही।
जिसे पाने वाले पचा न पाते सही
अन्यथा
हमारा रुधिर लाल होकर भी
इतना दुर्गन्ध क्यों?

अनेकान्त-दर्शन को स्याद्वादमयी शैली में अपनाने से सम्पूर्ण ससार में लोकतन्त्र की जड़ें मजबूत होगीं और विश्व-शान्ति तथा विश्व-कल्याण का मार्ग प्रशस्त होगा, जिससे विश्व-विजयिनी मानवता की प्रतिष्ठा होगी। मूकमाटी मे सन्त-कवि ने लोकतन्त्रात्मक भावना को निम्नाकित पक्तियों में व्यक्त किया है-

लोक में लोकतन्त्र का नीड
तब तक सुरक्षित रहेगा
जब तक "भी" श्वास लेता रहेगा।
"हम भी हैं, तुम भी हो, सब कुछ"-
सच्चे लोकतन्त्र का प्रतीक है।

आज वर्तमान गणतन्त्रीय न्याय-व्यवस्था एक दिखावा बन गयी है। न्याय की लम्बी प्रक्रिया, कानून का अधा होना, रिश्वतखोरी और अर्थ की प्रभुता के कारण अपराध- प्रवृति कम होने के बजाय बढ़ती जा रही है। क्योंकि-

प्रायः अपराधी जन बच जाते हैं
निरपराध ही पिट जाते हैं।

* * * * *

इसे हम गणतन्त्र कैसे कहें
यह तो शुद्ध धन–तन्त्र है
या मन माना तन्त्र है।
आशातीत विलम्ब के कारण
अन्याय न्याय–सा नहीं,
न्याय अन्याय–सा लगता ही है,
इस युग में इसके साथ। (मूकमाटी)

* * * * *

युग–चेतना जाग्रत करने वाली ये मार्मिक पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

अन्याय मार्ग का अनुसरण करने वाले
रावण जैसे शत्रु पर
रणागन में कूदकर राम जैसे
श्रमशीलों का हाथ उठना ही
कलियुग में सत्युग ला सकता है,
धरती पर यहीं पर।
क्योंकि–
सत्पुरुषो से मिलने वाला
वचन–व्यापार का प्रयोजन
पर–हित सम्पादन है,
और
पापी पातको से मिलने वाला
वचन व्यापार का प्रयोजन
पर–हित पलायन, पीडा है। (मूकमाटी)

वर्तमान राजनीति में व्याप्त स्वार्थपरता, पद–लोलुपता और भाई–भतीजावाद ने बहुदलवाद को जन्म दिया है। लोकतन्त्र मे राजनीतिक दलो का होना अनिवार्य है, किन्तु दलों का दल–दल नहीं। स्वतन्त्रता, स्वायत्तता, राष्ट्रीय एकता, धर्मनिरपेक्षता, शान्ति, न्याय, नागरिक–कल्याण आदि को सुरक्षित करने के लिए तथा देश की निरंकुश सत्ता की मनमानी पर अंकुश लगाने के लिए, राजनीतिक दलों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है, किन्तु दलगत कुत्सित राजनीति से सचालित दल राष्ट्र को अहितकर ही सिद्ध होते हैं। दल–बहुलता के दुष्परिणाम सन्त–कवि के शब्दों में–

दल बहुलता शान्ति की हननी है,
जितने विचार, उतने प्रचार
उतनी चाल–ढाल
हाला–घुली जल–ता
क्लान्ति की जननी होती है ना।
तभी तो,
अति–वृष्टि का, अनावृष्टि का
और
अकाल–वर्षा का समर्थन हो रहा है यहाँ। (मूकमाटी)

जब तक स्वार्थी, दंभी और लोभी मनुष्यों के मन में "सबके उदय" की बात नहीं पनपती तब तक समाजवाद का सपना साकार नहीं हो सकता। अहंवाद के पोषक समाजवाद का नारा लगाते हैं, तो हास्यास्पद लगता है। मूकमाटी में सन्त कवि ने बतलाया कि सही समाजवाद तो यह है–

समाजवाद का अर्थ होता है समूह
और समूह यानी
सम–समीचीन ऊह–विचार है
जो सदाचार की नींव है
कुल मिलाकर अर्थ यह हुआ कि
प्रचार–प्रसार से दूर
प्रशस्त विचार वालो का
जीवन ही समाजवाद है।
समाजवाद, समाजवाद चिल्लाने मात्र से
समाजवादी नही बनेगे।

"मूकमाटी" महाकाव्य मे सामयिक प्रसगो को पर्याप्त रूप से समेटा गया है। यत्र–तत्र बिखरे उदाहरण मर्म पर चोट करने में तीखे, सशक्त एव प्रभावी हैं। कतिपय सामयिक मार्मिक व्यग्य कृत्रिम धर्मान्धता, आधुनिकता, जनसख्या, महँगाई, बेरोजगारी और अर्थान्धता पर करारी चोट करते हैं, यथा–

अरे ! धनिको का धर्म दमदार होता है–
उनकी कृपा कृपणता पर होती है,
उनके मिलन से कुछ मिलता नही,
काकतालीय न्याय से
कुछ मिल भी जाय
वह मिलन लवण मिश्रित होता है,
पल मे प्यास दुगुनी हो उठती है।

* * * * *

क्या सदय हृदय भी आज
प्रलय का प्यासा बन गया ?
क्या तन सरक्षण हेतु
धर्म ही बेचा जा रहा है ?
क्या धन–सम्वर्द्धन हेतु
शर्म भी बेची जा रही है ?

* * * * *

कहाँ तक कहें अब
धर्म का झंडा भी
डण्डा बन जाता है
शास्त्र शस्त्र बन जाता है
अवसर पाकर
और
प्रभु–स्तुति में तत्पर
सुरीली बाँसुरी भी

बाँस बन पीट सकती है,
प्रभु–पथ पर चलने वालो को
समय की बलिहारी है।

* * * * *

"वसुधैव कुटुम्बकम्"
इसका आधुनिकीकरण हुआ है,
"वसु" यानी द्रव्य–धन
"धा" यानी धारण करना
धन ही कुटुम्ब बन गया है
धन ही मुकुट बन गया है जीवन का।

* * * * *

अब धन–सग्रह नहीं,
जन–सग्रह करो।

* * * * *

प्रायः यही सीखा है विश्व ने
वैश्यवृत्ति के परिवेश में
वेश्यावृत्ति की वैयावृत।

* * * * *

पद वाले ही पदोपलब्धि हेतु,
पर को पद–दलित करते है,
पाप–पाखण्ड करते हैं।

* * * * *

सूखा प्रलोभन मत दिया करो,
स्वाश्रित जीवन जिया करो,
कपटता की पटुता को
जलाञ्जलि दो।

* * * * *

अर्थ की आँखें
परमार्थ को देख नही सकतीं
अर्थ की लिप्सा ने बड़ों–बडो को
निर्लज्ज बनाया है।

आज सम्पूर्ण जगत् को शान्ति की आवश्यकता है। अह की प्रवृत्ति ने मानवता को पतित कर दिया है। सर्वत्र आतकवादी प्रवृत्तियॉं मुखर हो रही हैं। बहिर्जगत् तो पूर्ण रूप से आतकित है ही, अन्तर्जगत् भी विषय–कषायो, भोग–विलोसो के विकारों से आतकित है। जब–तक हमारे अन्तर्जगत् में सद्विचारों, सद्वृत्तियो का स्फुरण नही होता और वे आचरण में नहीं आतीं– तब–तक सुख–शान्ति की खोज अधूरी ही रहेगी और हम विज्ञान की अँधेरी दौड मे दौडते रहेंगे–मशक। अणु–परमाणु की शक्ति का सदुपयोग मानव–कल्याण की दिशा में और अपनी आत्म–शक्ति का सदुपयोग आत्म–कल्याण की दिशा में करना होगा, अन्यथा आतकवाद का

प्रबल-प्रभाव ही नजर आयेगा, किन्तु संकल्प-शक्ति के समक्ष असत् को घुटने टेकने ही पड़ते हैं और सदैव "सत्यमेव जयते"-

जब तक जीवित है आतकवाद
शान्ति का श्वास ले नहीं सकती
धरती यह, ये आँखें अब
आतंकवाद को देख नहीं सकतीं
ये कान अब
आंतकवाद का नाम सुन नहीं सकते,
यह जीवन कृत-संकल्पित है कि
उसका रहे या इसका
यहाँ अस्तित्व एक का होगा। (मूकमाटी)

* * * * *

न्यायोचित सुख सुलभ नहीं,
जब-तक मानव-मानव को।
चैन कहाँ धरती पर तब-तक,
शान्ति कहाँ इस धरती पर।
जब-तक मनुज-मनुज का यह
सुख भाग नहीं सम होगा।
शमित न होगा कोलाहल,
संघर्ष नही कम होगा। (कुरुक्षेत्र-दिनकर)

विस्तृत विवेचन के पश्चात् निष्कर्षत हम कह सकते हैं कि "मूकमाटी" के माध्यम से विश्व-जीवन को प्रेरित करने वाला महान् मानवतावादी सदेश प्रसारित हुआ, जो समग्र मानव-जाति की थाती है। इस महाकाव्य के जीवन-दर्शन मे ऐसी सास्कृतिक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक मानवीय निष्ठाएँ प्रतिफलित हुई हैं, जो अनन्त काल तक मानव-जाति की प्रेरणा का अजस्र स्रोत बनकर उसे आप्लावित करती रहेगी। साहित्यिक महत्त्व की दृष्टि से महाकाव्य काव्य की रूप-रचना में महाकाव्यत्व का जो विकास हुआ है, वह महत्वपूर्ण सृजनात्मक एवं काव्यशास्त्रीय उपलब्धि कही जायेगी।

अन्त में, विद्वान् लेखक श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन का यह कथन उद्धृत करना प्रासगिक कर्त्तव्य समझता हूँ-"यह कृति अधिक परिमाण मे काव्य है या अध्यात्म कहना कठिन है। लेकिन निश्चिय ही यह है आधुनिक जीवन का अभिनव शास्त्र और, जिस प्रकार शास्त्र का श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय करना होता है, गुरु से जिज्ञासापूर्वक समाधान प्राप्त करना होता है, उसी प्रकार इसका अध्ययन और मनन अद्भुत सुख और सतोष देगा, ऐसा विश्वास है।" (भूमिका से उद्धृत)

अन्तत कहा जा सकता है कि "मूकमाटी" उद्देश्य, कथा वस्तु, चरित्र तत्त्व, जीवन-दर्शन, शिल्प-विधान-रस, अलंकार, छन्द, भाषा, शैली, शीर्षक एव नवीन परिकल्पन आदि समुचित मानदण्डो की कसौटी पर कसने पर सहज ही एक अनुपम आधुनिक महाकाव्य की गरिमा से मण्डित हो जाता है। सन्त-कवि आचार्यश्री विद्यासागर के सम्पूर्ण साहित्य का सिंहावलोकन करने पर यह कहना समीचीन होगा कि सन्त-कवि ने काव्य की विस्तृत पट-भूमि पर अपनी विराट् सधी तूलिका से जो चित्र आँके हैं, उनके रंग न कभी धुँधले होंगे और न कभी रेखायें ही मिटेंगी।

●

उपसंहार

"मूकमाटी" सन्त-कवि आचार्य श्री विद्यासागरजी की अद्यतन प्रौढतम काव्य-कृति है और सर्वोत्कृष्ट विश्व-साहित्य की एक अनुपम कडी है। इसे अध्यात्म और रूपक महाकाव्य कहना समीचीन प्रतीत होता है।

किस काव्यकृति को महाकाव्य कहा जाय और किसको नहीं ? यह सर्वथा स्वाभाविक प्रश्न उठता है। वस्तुत: युग जीवन की चेतना को आत्मसात् करने के कारण महाकाव्य युग की देन कहे जाते हैं। प्रत्येक युग के निर्माण में विभिन्न परिस्थितियों का योगदान रहता है। अस्तु युगीन परिस्थितियों की प्रेरणा का परिणाम होने के कारण महाकाव्य के स्वरूप में भी परिवर्तन दृष्टिगत होता है। अपने युगीन सन्दर्भो में आधुनिक महाकाव्य भी किसी प्रकार से अतीत के आर्ष महाकाव्यों से कम महत्त्वपूर्ण नही हैं।

"मूकमाटी" का रचना फलक जहाँ रामायण, महाभारत और रामचरितमानस जैसे युगप्रवर्तक महाकाव्यो की भॉति व्यापक है वही उसके रचयिता वाल्मीकि, व्यास और तुलसीदास जैसे रचयिता संत और साधक भी है। इसके अतिरिक्त युग-चेतना का उद्घोष, जातीय जीवन का प्रतिनिधित्व, नवीन सामाजिक-संरचना के उदात्त संकल्प, आध्यात्मिक निष्ठाओ के परिष्कार, महत् साम्कृतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा, और कलात्मक औदात्त के कारण "मूकमाटी" को हिन्दी साहित्य का गौरव-ग्रन्थ कहना समीचीन है।

इसी सन्दर्भ मे विद्वान् लेखक श्री लक्ष्मीचन्द्र जी जैन का यह कथन उद्धृत करना प्रासंगिक प्रतीत होता है- "यह कृति अधिक परिमाण मे काव्य है या अध्यात्म, यह कहना कठिन है। लेकिन निश्चय ही यह है आधुनिक जीवन का अभिनव शास्त्र और, जिस प्रकार शास्त्र का श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय करना होता है, गुरु से जिज्ञासापूर्वक समाधान प्राप्त करना होता है, उसी प्रकार इसका अध्ययन और मनन अद्भुत सुख और संतोष देगा, ऐसा विश्वास है।" (भूमिका से)

महान् आत्माओ का चरित्र-गान, आराधना, उपासना, पूजा, वंदना स्वयमेव काव्य बन जाती है, यथा-

वियोगी होगा पहला कवि आह से निकला होगा गान।
उमड-घुमड़ कर चुपचाप बही होगी कविता अनजान।।

ये पंक्तियॉ कितनी सार्थक हैं। बहेलिए द्वारा क्रौंच-वध का करुण-क्रन्दन वाल्मीकि रामायण के सृजन का कारण बना, तो युगो-युगो से करुण-क्रन्दन करती हुई माटी-"मूकमाटी" के सृजन का कारण बनी। जो क्रन्दन हमारे साधारण जनो के कान सुनने में बहरे है, वह तो कोई-तपी, साधक ही सुन सकता है।

"साकेत" महाकाव्य मे व्यक्त स्व राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तजी की ये पंक्तियॉ दृष्टव्य है-

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय, सहज सम्भाव्य है।।

मूकमाटीकार ने ऐसा ही भाव निम्नांकित पंक्तियो मे अभिव्यक्त किया है-

लालित्यपूर्ण कविता लिख के तुम्हारी,
होते अनेक कवि है, कवि नामधारी।
मैं भी सुकाव्य लिख के कवि तो हुआ हूँ।
आश्चर्य तो यह निजानुभवी हुआ हूँ।। *(निरंजन शतक ७२)*

स्वान्तः सुखाय-स्वानुभूति उस परम तत्त्व की है जो निजानन्दानुभूति का रस-पान कराता है। जो अजर-अमर अविनाशी है। सन्त गोस्वामी तुलसीदास जी ने "रामचरितमानस" की रचना के सन्दर्भ में लिखा है-

"स्वान्त: सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा"।

यह "स्वान्तः सुखाय" आत्म-सुख या आत्मानुभूति का पर्यायवाची है। स्वानुभूति उस परम तत्त्व की जो निजानन्दानभूति का रस-पान कराती है।

साहित्य का सम्बन्ध मूलतः भावों से होता है। अतः साहित्यकार केवल सामाजिक जीवन को ही चित्रित करके चुप नहीं रहता, वरन् मानवता के व्यापक धरातल पर, वह स्वयं व्यक्ति और समाज के नियमों का सन्तुलन स्थापित करता है और मनुष्य को उसकी भावभूमि से ऊपर उठाकर उदात्ततर बनाता हुआ, आनन्द की सृष्टि करता है। इसी व्यापक मानवता से काव्य में स्थायित्व उत्पन्न होता है।

कृतिकार मानव-हृदय के स्थायी भावों तथा शाश्वत्-सत्य को अपनी कृति में कलात्मक पद्धति से प्रस्तुत करता है और युग की समस्याओं को जीवन की मूलभूत समस्याओं के सन्दर्भ में जॉचता-परखता है। वह ऐसे शाश्वत सौन्दर्य की व्यजंना करता है, जो देश-काल की सीमाओं को भी लॉघ जाती है। इस प्रकार का काव्य विश्व-काव्य की संज्ञा पा जाता है।

सार्वदेशिक और सार्वकालिक विश्व-काव्यों में कुछ समान प्रवृत्तियॉं पायीं जाती हैं। उनका मूलाधार भिन्न नहीं होता और उनमें जीवन के शाश्वत-सत्य का निरूपण होता है। यह सत्य इतिहास से भी महान् बन जाता है। इस तरह का काव्य स्थिति का विश्लेषण करते हुये, किसी नवीन दिशा की ओर संकेत करता है और इसका आधार कवि की अनुभूति, साधना और जन-जीवन से प्राप्त प्रेरणा होती है। इससे मानवीय भावों का तादाम्य स्थापित हो जाता है। मूकमाटी में सन्त-कवि ने इन्हीं मूलभूत समस्याओ और विश्व सत्य को अभिव्यक्त किया है।

मूकमाटी के मन का विश्लेषण और सश्लेषण विश्व के सम्पूर्ण मानव-समाज का विश्लेषण एव संश्लेषण है। वर्ग, जाति, धर्म आदि में विभाजित मानव समुदाय को इकाई में देखने-परखने का प्रयत्न कवि-प्रतिभा का द्योतक है। इकाई और सत्य कभी भिन्न नही होता, क्योंकि भिन्नता भौतिक-जगत् में सम्भव होती है, भाव-जगत् में नहीं।

मूकमाटी की योजना इसी सार्वभौम आधार पर हुई है। कथा और पात्र में आचार्यश्री की दार्शनिक दृष्टि का आधार व्यापक है। विश्व-काव्यों में मूकमाटी का अपना एक स्वतन्त्र स्वरूप है। "मूकमाटी" विश्व-साहित्य के टी एस ईलियट कृत "पैराडाइज लॉस्ट" तथा मिल्टन के "वेस्ट लैंड" काव्यों की कोटि में आता है।

आचार्य श्री ने मूकमाटी मे युग की बिखरी हुई समस्याओ को लेकर, उनका मानव-जीवन के शाश्वत सत्य से पूर्ण सामंजस्य स्थापित कर दिया है। इसमे एक ओर युग और राष्ट्र की सम्पूर्ण चेतना है, तो दूसरी और जीवन के शाश्वत्-उपादान भी। आचार्य श्री ने ऐसे तत्त्वों की खोज की है, जो युग की विभीषिका का वास्तविक समाधान प्रस्तुत करते है।

मूकमाटी मे आचार्य श्री ने युग-चेतना को सार्वभौम रूप प्रदान किया है। उनका काव्यात्मक सदेश वर्ग की सीमा से परे है। मूकमाटी का जीवन-दर्शन और अनन्तवाद मानवता और मानवीय भावो पर आधारित है।

आचार्यश्री की साधना और चिन्तन-मनन व्यापक है। वे जीवन की चिरन्तन और शाश्वत् समस्याओं को लेकर चले है। उनका दृष्टिकोण दार्शनिक एव मनोवैज्ञानिक है। वे व्यक्ति की वेदना, करुणा और शान्ति को आत्मवाद, अनन्तवाद और मानवतावाद की उच्च भाव-भूमि से देखते हैं। उनकी दृष्टि से मानवता की विजय ही मानव-संस्कृति की विजय है। श्रमण-संस्कृति, मानव-सस्कृति का ही पर्यायवाची है।

समग्र विवेचन के बाद, निष्कर्षत· कहा जा सकता है कि "मूकमाटी" उद्देश्य, कथा-वस्तु, चरित्र-तत्त्व, जीवन-दर्शन, शिल्प-विधान, भाषा-शैली, शीर्षक आदि महाकाव्य के निर्धारित एव समुचित मानदण्डों की करौटी पर कसने पर सहज ही एक अनुपम आधुनिक महाकाव्य की गरिमा से विभूषित हो जाता है। "मूकमाटी" हिन्दी-काव्य-जगत् का अभिनव महाकाव्य और विश्व-काव्य की अनुपम कृति है।

आचार्यश्री विद्यासागरजी के अपरिमित, अनुपम साहित्य सृजन का सिहावलोकन करने पर, यह कहना समीचीन होगा कि सन्त-कवि ने काव्य की विस्तृत पर-भूमि पर अपनी विराट् सधी तुलिका से जो शब्द-चित्र ऑंके हैं, उनके रग न कभी धुँधले हो सकते हैं और न ही कभी रेखायें ही मिट सकती हैं।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

२. हिन्दी साहित्य की भूमिका – डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी

३. हिन्दी साहित्य की बीसवी शताब्दी – आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी

४. कला, साहित्य और समीक्षा – डॉ. भगीरथ मिश्र

५. भारतीय समीक्षा-सिद्धान्त – डॉ. सूर्यनारायण द्विवेदी

६. साहित्य-शास्त्र – डॉ. कमलाप्रसाद पाण्डेय

७. आधुनिक साहित्य – डॉ. ओम प्रकाश

८. हिन्दी साहित्य मे राष्ट्रीय काव्य का विकास – डॉ. के. के. शर्मा

९. आधुनिक साहित्य – आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी

१०. आधुनिक महाकाव्यो का शिल्प-विधान – डॉ श्यामनन्दन् किशोर

११. खड़ीबोली के गौरव-ग्रन्थ – विश्वम्भर 'मानव'

१२. साहित्यालोचन – डॉ. श्यामसुन्दरदास

१३. हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य – डॉ. गोविन्द राम शर्मा

१४. हिन्दी महाकाव्यो का स्वरूप विकास – डॉ. शम्भूनाथ सिह

१५. हिन्दी महाकाव्यो मे नारी-चित्रण – श्री श्यामसुन्दर व्यास

•

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज का संक्षिप्त-परिचय

जन्म	–	आश्विन शुक्ला पूर्णिमा विक्रम सं. २००३
जन्म-स्थल	–	ग्राम सदलगा (जिला बेलगाम) कर्नाटक।
जन्म-नाम	–	विद्याधर
पितृनाम	–	श्री मल्लपा जी अष्टगे (सम्पति, मुनि श्री मल्लसागर जी)।
मातृनाम	–	श्री श्रीमती जी (समाधिस्थ आर्यिका समयमति जी)।
बहिनें	–	२ बहिनें बाल-ब्रह्मचर्य के साथ आत्म-साधनारत।
भाई	–	आचार्य श्री के अतिरिक्त तीन भाई, जिनमें दो मुनि श्री समय सागर जी एवं मुनि श्री योगसागर जी के नाम से दीक्षित, प्रतिपल साधनारत।
मातृ-भाषा	–	कन्नड।
मुनि-दीक्षा	–	आषाढ़ शुक्ल पंचमी वि. सं. २०२५ तदनुसार ३० जून १९६८ अजमेर (राजस्थान) में।
आचार्य-पद	–	मगसिर कृष्ण द्वितीया वि स २०२९ तदनुसार २२ नवम्बर १९७२ नसीराबाद (राज) में।

आचार्य श्री विद्यासागर जी को जहाँ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी, हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला, कन्नड आदि अनेक भाषाओं में प्रकाण्ड पाण्डित्य प्राप्त है, वहीं दर्शन, इति हास संस्कृति न्याय, व्याकरण, साहित्य, मनोविज्ञान और योगविद्याओ मे अनुपम वैदुष्य भी उपलब्ध है। आशु-कवित्व और प्रत्युत्पन्न-मतित्व अत्यन्त प्रयस्य गुण हैं आपके। ज्ञानाभ्यास- एवं स्वसाधना में अनवरत प्रवृत्त। भव्यजीवों के आत्म-कल्याण हेतु अनेक ग्रन्थों का प्रणयन एवं सरस्वती के भण्डार की अक्षय-निधि। अनुवादित, मौलिक काव्य-सृजन। अपरिमित प्रवचन-साहित्य।

आचार्य श्री विद्यासागरजी का रचना-संसार

१. काव्य-संग्रह – १ चेतना के गहराव मे (सचित्र प्रतिनिधि काव्य संकलन) २. डूबो मत, लगाओ डुबकी, ३ तोता रोता क्यो ? ४ दोहा-दोहन ५. नर्मदा का नरम कंकर, ६ मूकमाटी (महाकाव्य)।

२. पद्यानुवाद – १ इष्टोपदेश, २ गोमटेश थुदि, ३ द्रव्य-संग्रह-बसन्ततिलका, ४. योगसार, ५. समाधितन्त्र, ६. एकीभाव-स्तोत्र (मन्दाक्रान्ता छंद में), ७. कल्याण मन्दिर स्तोत्र (बसंततिलका छद में), ८ देवागम-स्तोत्र, ९ पात्रकेशरी स्तोत्र (जिनेन्द्र-स्तुति), १० वृध्द् स्वयंभू-स्तोत्र "समंतभद्र की भद्रता (ज्ञानोदय छंद में), ११. रत्नकरण्ड श्रावकाचार – (रयण-मंजूषा) १२. समण सुत्तम् (जैन गीता बसंततिलका छंद मे), १३ समयसार कलश (निजामृत पान), १४. आत्मानुशासन (गुणोदय-ज्ञानोदय छद में), १५. अष्ट पाहुड़, १६. द्वादश अनुप्रेक्षा (संस्कृत), १७. नियम सार, १८. प्रवचन सार, १९. समयसार (कुन्द-कुन्द का कुन्दन बसंत तिलका छंद में), २० पंचास्तिकाय (संस्कृत में अप्राप्य)।

३. शतक संग्रह – १. श्रमण शतकम् (संस्कृत तथा हिन्दी), २. निरंजन शतकम् (संस्कृत द्रुत विलंबित तथा हिन्दी बसंततिलका छंद में), ३ परिषह जय शतकम् (ज्ञानोदय) (संस्कृत तथा हिन्दी में), ४. भावना शतकम् (तीर्थंकर ऐसे बने

संस्कृत तथा हिन्दी आद्यान्त यमकालकार), ५. सुनीति शतकम् (संस्कृत तथा हिन्दी में), ६. निजानुभव शतक (हिन्दी), ७. मुक्तक शतक (हिन्दी) (प्रेस में) नोट – विद्या काव्य भारती नाम से सद्यः प्रकाशित संकलन समस्त हिन्दी शतकों का संकलन है।

४. प्रवचन संग्रह – १. आत्मानुभूति ही समयसार, २ आदर्श कौन ?, ३. गुरुवाणी, ४. जयन्ती से परे, ५. जैन दर्शन का हृदय, ६ डबडबाती आँखें, ७. तेरा सो एक, ८. न धर्मो धार्मिकैर्विना, ९. प्रवचन पारिजात, १०. प्रवचन प्रदीप, ११. प्रवचन प्रमेय, १२. ब्रह्मचर्य, चेतन का भोग, १३. भक्त का उत्सर्ग, १४. भोग से योग की ओर, १५ मर हम ... मरहम बने, १६. मानसिक सफलता, १७. मूर्त से अमूर्त की ओर, १८ व्यामोह की पराकाष्ठा, १९ सत्य की छाँव में, २०. अकिंचित्कर, २१. प्रवचनामृत।

५. स्फुट रचनायें – १. आचार्य श्री शान्ति सागर–स्तुति, २. आचार्य श्री वीर सागर स्तुति, ३. आचार्य श्री शिवसागर स्तुति, ४. आचार्य श्री ज्ञान सागर–स्तुति, ५. शारदा स्तुति (सम्कृत तथा हिन्दी) ६. अनागत जीवन, ७ अब मैं मम मंदिर में रहूँगा, ८ अहो ! यही सिद्धशिला, ९. आत्माभिव्यक्ति, १० चेतन निज को जान जरा, ११ परभाव त्याग तू बन शीघ्र दिगम्बर, १२. बनना चाहता यदि शिवागनापति, १३. भटकन तब तक भव में जारी, १४. मोक्ष ललना को जिया! कब वरेगा ?, १५ विज्जाणुवेक्खा (प्राकृत), १६ जम्बे स्वामी चरित्र (अप्राप्य), १७ समकित लाभ, १८. My Self, १९. अर्थ अनर्थेरमूल (बगला), २० नदीर शीतल जल (बगला), २१ कन्नड कविताएँ।

सन्दर्भ ग्रन्थ – आचार्यश्री की जीवन–कथा पर आधारित कथानक –

(१) विद्याधर से विद्यासागर – लेखक श्री सुरेश 'सरल' जबलपुर (म.प्र)

(२) आचार्य श्री के जीवन–दर्शन पर लिखित नाटक –
'मुक्ति पथ का पथिक' – लेखिका – डॉ विमला चौधरी, जबलपुर, (म प्र.)

(३) आचार्य श्री विद्यासागर विशेषाक – तीर्थकर (मासिक) सपादक – डॉ नेमीचन्द्र जैन, ६५, पत्रकार कालोनी, इन्दौर (म प्र) (नव दिस १९७८ अक)

(४) सम्कृत शतक परम्परा और आचार्य विद्यासागर के शतक – डॉ आशालता मलैया द्वारा सागर विश्वविद्यालय, सागर (म प्र) से सन् १९८४ में पी–एच डी. हेतु स्वीकृत शोध–प्रबन्ध।

(५) मूकमाटी महाकाव्य एक अनुशीलन – कल्पना जैन द्वारा डॉ. के एल जैन हिन्दी विभागाध्यक्ष शासकीय महाविद्यालय टीकमगढ (म.प्र) के निर्देश मे रीवाविश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) के लिए एम.ए के प्रश्न–पत्र हेतु लिखित लघु शोध– प्रबन्ध।

* * *

मुद्रक – अनिल मुद्रणालय, नेपियर टाऊन, जबलपुर